...کی کانفرنس

ادنیٰ سی سوگند
جیالال کول ناظر

انگ کے دیگر ذرائع آمدنی کھو چکتے ہے

شری پریم ناتھ جی بھان

صاحب صدرادونیہ پنڈت ا بی متو صاحب کے ساتھ اس بات میں بالکل متفق ہوں کہ جاتی کو ترقی کی راہ پر لے جانے کے لئے فرض شناسی اور سلجھے ہوئے دماغ رکھنے والوں کی ایک مرکزی کمیٹی کی بیحد ضرورت ہے اور ایک تنخواہ دار جنرل سیکرٹری کا مقرر ہونا ضرور ہے۔ ہمارے سماج کے نوجوان لڑکوں اور لڑکیوں کو اپنے شاندار ماضی سے باخبر رکھنے کی سخت ضرورت ہے۔ جاتی کے مختلف سکولوں میں ایسی درسی کتابیں تیار کی جانی چاہئیں جن میں بچوں اور بچیوں کو یہ بتایا جائے کہ ہمارے بزرگوں نے تہذیب اور تمدن کی کس طور آبیاری کی ہے کس طرح سے سائنس کے مختلف شعبوں میں کشمیری پنڈتوں نے اپنی ایجادوں کے ذریعہ نہ صرف اپنی جاتی کو فیض پہنچایا بلکہ تمام دنیا کو اپنی ذہنی کاوشوں سے مالامال کر دیا۔ فانی آرٹ میں کشمیری پنڈتوں نے جو قدریں لوگوں کے سامنے رکھیں وہ اب تک درخشاں ہیں۔ حالیہ کے میدان میں ہم نے پھر کو پیدا کیا۔ آرٹ کی دنیا میں کشمیر نے نامور درویش کیا۔ کرناٹک میوزک کا جنم داتا سارنگ دیو تھا اور وہ کشمیری پنڈت تھا۔ کشمیر کی دستکاریاں دنیا سے حد خراج عقیدت حاصل کر رہی ہیں۔ مختصر انڈسٹری کشمیری پنڈتوں کی ایجاد ہے۔ ان باتوں کے پیش نظر ضروری ہے کہ ہمارے نونہالوں کو اپنے بزرگوں کی ادبی، فنی، سماجی، سائنسی وغیرہ تخلیقات سے روشناس کیا جاتا ہے۔

اوتار کرشن صاحب خشو

سمجھے بھائی صاحب کی تقریر بہت اچھی لگی ہیں اپنے نوجوانوں میں محنت مزدوری کا جذبہ ابھارنا چاہئے اپنے ہاتھوں سے کام کرنا اور قومی پیداوار میں اضافہ کرنا وقت کی سب سے بڑی ضرورت ہے ہمارے بچوں کی تعلیم و تربیت ایسی ہونی چاہئے کہ وہ ہر قسم کی صنعتوں کو چلانے کی صلاحیت رکھتے ہوں ہمارے بچوں کو چاہئے کہ وہ اپنے سچے دل سے بیدار تھا کرنا سیکھیں بچوں میں روحانی جذبہ پیدا

کرامت مزدوری سے ہمارے بچوں میں اس شیبا کے لئے جہاں محبت ہو وہاں نئے زمانے کا ترقی سے بیدار ہونا چاہئیں

شری گوپی ناتھ جی ہنڈو

شری خشو صاحب نے جن زرین خیالات کا اظہار کیا وہ واقعی قابل تعریف ہیں، دوستو میں ایک کاریگر محنت کش ہوں لیکن سماجی تقاضوں نے مجھے مجبور کیا کہ میں جاتی کی خاطر سر دھڑ کی بازی لگاؤں اور اپنے ذاتی مفادات کو قوم کے وسیع مفادات پر قربان کروں۔ میری آتما کو کافی سکھ و شانتی پراپت ہوگی جب میں دیکھوں کہ ہر ایک پنڈت گھرانے میں کسی نہ کسی دستکاری کا چرچا ہو رہا ہے دنیا بی اے اور ایم اے پاس نوجوانوں کی نہیں بلکہ محنت کش مزدوروں کی ہے اس لئے ہمیں اپنے ہاتھوں سے کام کرنا سیکھنا چاہئے۔

صدر کا بھاشن

قوم کے سرباز نوجوانو! میں آپ کے خیالات سن کر بہت متاثر ہوا ہوں۔ کشمیری پنڈت سماج نے اپنے بزرگوں کے روشن نام کو چار چاند لگائے ہیں تو ہمیں ان باتوں کی طرف دھیان دینا چاہئے۔ سماجی برائیوں کا جڑ سے ہی خاتمہ کرنا چاہئے۔ بھارت کی بہت سی برادریاں اور جاتیاں جو اس وقت کافی ترقی پا چکی ہیں بری رسموں کے چنگل سے آزاد ہیں مثلاً کائستھ برادری وہ شادی بیاہ پر زیب و زیبائش پر ہزاروں روپیہ خرچ کرتے ہیں اور یہاں برادری بڑی رسموں کے بندھنوں سے آزاد ہے لیکن اتفاق اور اتحاد کے لئے اپنی مثال آپ ہیں۔ ہماری برادری کی شادیاں سو روپیہ کے برتاؤ کے ذریعہ ... ہماری مرکزی سبھا اس طرح سے قائم کرنی ہے کہ وہ جاتی کا دوست ... ہو۔ جو بہتری دماغ جاتی میں ہو اور جو مرکزی سبھا کا ممبر بنایا جانا چاہئے اور اس کی شاخیں محلہ محلہ اور گاؤں گاؤں میں قائم ہونی چاہئیں۔

امر شمیدہ ... کا

ॐ श्रीगणेशाय नमः । श्रीगुरुभ्यो नमः । श्रीशंकराचार्येभ्यो नमः । श्रीकाशीविश्वेश्वराभ्यां नमः । अथ द्वितीयाध्यायप्रारंभः । तहां सर्व प्राणीयोंकी अहिंसा तथा भिक्षा अन्नका भोजन यहही हमारा परम धर्म है । या प्रकारकी बुद्धिकरिकै अर्जुनकी युद्धतैं विमुखताकूं श्रवण करिकै अपणे दुर्योधनादिक पुत्रोंके राज्यकी अचलताकूं निश्चय करिकै स्वस्थ हुआ है चित्त जिसका ऐसा जो धृतराष्ट्र है ता धृतराष्ट्रकी हर्षकरिकै उत्पन्न भई जो (तिसतैं अनंतर क्या वृत्तांत होता भया या प्रकारकी) आकांक्षा है । ता आकांक्षाके निवृत्त करणेकी इच्छावान् सो संजय ता धृतराष्ट्रके प्रति या प्रकारका वचन कहता भया । यह वार्त्ता वैशंपायन जनमेजयके प्रति कहे है ।

(मू. श्लो.) संजय उवाच । तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणं । विषीदंतमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ १ ॥ (पदच्छेदः) तं[६] । तथा[१] । कृपया[२] । आविष्टं[३] । अश्रुपूर्णाकुलेक्षणं । विषीदंतं[५] । ईदं । वाक्यं । उवाच । मधुसूदनः ॥ १ ॥ (पदार्थः) हे धृतराष्ट्र पूर्व उक्त[१] कृपानैं[२] व्याप्त[३] करा हुआ तथा अश्रुकरिकै[४] पूर्ण तथा आकुल हैं नेत्र जिसके तथा विषादकूं[५] प्राप्त हुआ ऐसा जो अर्जुन है तांके[६] प्रति श्रीकृष्णभगवान् यह वक्ष्यमाण वचन कहता भया ॥ १ ॥

टीका । यह भीष्म दुर्योधनादिक हमारे संबंधी हैं या प्रकारका व्यामोह है कारण जिसविषे ऐसा जो स्नेहविशेष है । ता स्नेहका नाम कृपा है । ता कृपानैं व्याप्त करा हुआ जो अर्जुन है । इहां (कृपयाविष्टं) इतनै कहणेकरिकै अर्जुनविषे व्याप्तिरूप क्रियाका कर्मपणा कथन करा । और ता स्नेहरूप कृपाविषे ता व्याप्तिरूप क्रियाका कर्त्तापणा कथन करा । ता कहणेकरिकै । ता कृपाविषे आगंतुकपणा निवृत्त करा । ऐसी स्वभावसिद्ध कृपानैं सो अर्जुन व्याप्त करा है । या कारणतैंही सो अर्जुन विषादकूं प्राप्त हुआ है । तहां स्नेहके विषयरूप जो अपणे बांधव हैं । तिन बांधवोंके नाशकी शंका है कारण जिसका ऐसा जो शोकरूप चित्तका व्याकुलीभाव है ताका नाम विषाद है । इहां (विषीदंतं) या शब्दकरिकै ता विषादविषे प्राप्तिरूप क्रियाका कर्मपणा कथन करा । और अर्जुनविषे ता प्राप्तिरूप क्रियाका कर्त्तापणा कथन करा । ता कहणेकरिकै तिस विषादविषे आगंतुकपणा सूचन करा । कदाचित् उत्पन्न होणेहारे पदार्थकूं आगंतुक कहे है । ऐसे आगंतुक विषादके वशतैं अश्रुरूप जलकरिकै पूर्ण हुए हैं नेत्र जिसके तथा वस्तुके दर्शनकी असामर्थ्यतारूप आकुलताकरिकै युक्त हैं नेत्र जिसके ऐसा जो अर्जुन है । ता अर्जुनके प्रति सो मधुसूदनभगवान् अनेक प्रकारकी

युक्तियोंसहित यह वक्ष्यमाण वचन कहता भया । ता अर्जुनकी सो भगवान् उपेक्षा नहीं करता भया । इहां संजयनैं कृष्णभगवान्का जो (मधुसूदनः) यह नाम कथन करा है । ताकरिकै संजयनैं धृतराष्ट्रके प्रति यह अर्थ सूचन करा । “ मध्वाख्यं असुरं सूदयतीति मधुसूदनः ” । अर्थ यह । मधुनामा असुरकूं जो नाश करै है ताकूं मधुसूदन कहे हैं । ऐसा दुष्टोंके संहार करणेहारा कृष्णभगवान् अपणे स्वभावके अनुसार ता अर्जुनके प्रतिभी तुमारे दुर्योधनादिक दुष्ट पुत्रोंके हनन करणेकाही उपदेश करैगा । अथवा अपणे मधुसूदन नामके सार्थक करणेवासतै सो कृष्णभगवान् अर्जुनकूं निमित्तमात्र करिकै आपही तुमारे दुष्ट पुत्रोंकूं हनन करैगा । यातैं तुमनैं अपणे पुत्रोंके जयकी आशा कदाचित्भी नहीं करणी इति ॥ १ ॥ ❀ ॥ अब ता कृष्णभगवान्के वचनका दो श्लोकोंकरिकै कथन करे हैं ।

(मू. श्लो.) श्रीभगवानुवाच । कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितं । अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्त्तिकरमर्जुन ॥ २ ॥ (पदच्छेदः) कुतः । त्वा । कश्मलं । इदं । विषमे । समुपस्थितं । अनार्यजुष्टं । अस्वर्ग्यं । अकीर्तिकरं । अर्जुन ॥ २ ॥ (पदार्थः) हे अर्जुन इस भययुक्त स्थानविषे तुमारेकूं यह कश्मल किस हेतुतैं प्राप्त भया है कैसा है सो कश्मल श्रेष्ठ पुरुषोंकरिकै असेवित है तथा स्वर्गका विरोधी है तथा अकीर्ति करणेहारा है ॥ २ ॥

टीका । (श्रीभगवानुवाच) या वचनविषे स्थित जो भगवान्पद है । ता भगवान्पदका शास्त्रविषे यह अर्थ कथन करा है । श्लोक । “ ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः । वैराग्यस्याथ मोक्षस्य षण्णां भग इतींगना ” । अर्थ यह । संपूर्ण जो ऐश्वर्य है १ तथा संपूर्ण जो धर्म है २ तथा संपूर्ण जो यश है ३ तथा संपूर्ण जो श्री है ४ तथा संपूर्ण जो वैराग्य है ५ तथा संपूर्ण जो ज्ञान है ६ या षटोंका नाम भग है इति । ते ऐश्वर्यादिक षट्भग प्रतिबंधतैं रहित नित्यही जिसविषे रहैं । ताका नाम भगवान् है । अथवा भगवान्शब्दका यह अर्थ है । श्लोक । “ उत्पत्तिं च विनाशं च भूतानामागतिं गतिं । वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ” । अर्थ यह । जो सर्वज्ञ पुरुष सर्व भूतोंके उत्पत्तिकूं तथा ता उत्पत्तिके कारणकूं जानै है । तथा तिन सर्व भूतोंके नाशकूं तथा ता नाशके कारणकूं जानै है । तथा जो सर्वज्ञ पुरुष सर्व भूतोंके संपदारूप आगतिकूं तथा सर्व भूतोंके आपदारूप गतिकूं जानै है तथा जो सर्वज्ञ पुरुष विद्याकूं तथा अविद्याकूं जानै है । सो सर्वज्ञ पुरुष भगवान् या नामकरिकै कहणेयोग्य है इति । ऐसा

श्रीकृष्णभगवान् अर्जुनके प्रति या प्रकारका वचन कहता भया। हे अर्जुन स्नेहरूप कृपा तथा पूर्व उक्त विषाद तथा अश्रुपात यह तीनों हैं कारण जिसके तथा शिष्ट पुरुषोंकरिकै निंदित होणेतैं अत्यंत मलिन है स्वरूप जिसका ऐसा जो यह युद्धरूप स्वधर्मतैं निवृत्तिरूप कश्मल है। सो कश्मल इस युद्धभूमिविषे सर्व क्षत्रियोंतैं श्रेष्ठ तुमारेकूं किस हेतुतैं प्राप्त भया है। तात्पर्य यह। सो युद्धरूप स्वधर्मतैं निवृत्तिरूप कश्मल तुमारेकूं मोक्षकी इच्छारूप हेतुतैं प्राप्त भया है। अथवा स्वर्गकी इच्छारूप हेतुतैं प्राप्त भया है। अथवा कीर्त्तिकी इच्छारूप हेतुतैं प्राप्त भया है इति। अब या तीनों हेतुवोंकूं यथाक्रमतैं अनार्यजुष्टं, अस्वर्ग्यं, अकीर्त्तिकरं या तीन विशेषणोंकरिकै श्रीभगवान् निषेध करै है। (अनार्यजुष्टं) इत्यादिक अर्धश्लोककरिकै। हे अर्जुन अपणे वर्णआश्रमके धर्मोंकरिकै अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा मोक्षकी इच्छा करणेहारे जो अशुद्ध अंतःकरणवाले मुमुक्षु जन हैं। ऐसे मुमुक्षु जनोंनैं तौ यह स्वधर्मतैं निवृत्तिरूप कश्मल कदाचित्‌भी सेवन करणेयोग्य नहीं है। और सर्व कर्मोंके संन्यासका अधिकारी तौ शुद्ध अंतःकरणवालाही होवै है। यह वार्त्ता आगे कथन करैंगे। यातैं मोक्षकी इच्छारूप हेतुतैं ता कश्मलकी प्राप्ति संभवै नहीं। और यह स्वधर्मतैं निवृत्तिरूप कश्मल स्वर्ग-की प्राप्ति करणेहारे धर्मका विरोधी है। यातैं स्वर्गकी इच्छावान् पुरुषनैंभी सो कश्मल सेवन करणेयोग्य नहीं है। और सो कश्मल इस लोकविषे कीर्त्तिका अभाव करणेहारा है। अथवा अपकीर्त्ति करणेहारा है यातैं इस लोकके कीर्त्तिकी इच्छावान् पुरुषोंनैंभी सो कश्मल सेवन करणेयोग्य नहीं है। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। मोक्षकी इच्छावान् पुरुषोंनैं तथा स्वर्गकी इच्छावान् पुरुषोंनैं तथा कीर्त्तिकी इच्छावान् पुरुषोंनैं यह स्वधर्मतैं निवृ-त्तिरूप कश्मल सर्वथा परित्याग करणेयोग्य है। और तूं तौ मोक्षकी तथा स्वर्गकी तथा कीर्त्तिकी इच्छावान् हुआभी इस कश्मलकूं सेवन करता है। यातैं यह तुमारा बहुत अनुचित व्यवहार है इति॥ २॥ ॥*॥ शंका। हे भगवन्। अपणे बांधवोंकी सेनाके देखणेकरिकै उत्पन्न भया जो अधैर्य है। ता अधैर्यके वशतैं धनुष्मात्रकूंभी धारण करणेविषे असमर्थ जो मैं हूं। तिस हमारेकूं अबी क्या करणेयोग्य है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं।

(मू. श्लो.) क्लैब्यं मास्मगमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते। क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥ ३ ॥ (पदच्छेदः) क्लैब्यं। मास्म-गमः। पार्थ। न। एतत्। त्वयि। उपपद्यते। क्षुद्रं। हृदयदौर्बल्यं। त्यक्त्वा। उत्तिष्ठ। परंतप ॥३॥ (पदार्थः) हे पृथाके पुत्र तूं क्लीबभावकूं मत प्राप्त होउ तैं अर्जुनविषे यह क्लीबभाव नहीं बनि सकता है परंतप या क्षुद्र हृदयके दौर्बल्यकूं परित्याग करिकै तूं युद्धवासतै उठि खडा होउ ॥ ३ ॥

टीका । हे पृथाके पुत्र ओज तेज आदिकोंका भंगरूप जो अधैर्य है। ता अधैर्यरूप जो क्लीबभाव है। ता क्लीबभावकूं तूं मत प्राप्त होउ । इहां (हे पार्थ) या संबोधनकरिकै भगवान्नैं अर्जुनकेप्रति यह अर्थ सूचन करा । पृथामातानैं देवताका आराधन करिकै ता देवताके प्रसादतैं तुमारेकूं पाया था। यातैं तुमारेविषे बलकी अधिकता अत्यंत प्रसिद्ध है। ऐसा पृथाका पुत्र तूं इस क्लीबभावके योग्य नहीं है । अब अर्जुनपणेकरिकैभी ता क्लीबभावकी अयोग्यता निरूपण करे हैं। (नैतदिति) साक्षात् महेश्वरके साथिभी युद्ध करणेहारा तथा सर्व लोकविषे प्रसिद्ध महान् प्रभाववाला ऐसा जो तूं अर्जुन है। तिस तुमारेविषे यह अधैर्यरूप क्लीबभाव कदाचित्भी बनता नहीं। शंका । हे भगवन् । (न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः) अर्थ यह । मेरा मन भ्रमण करता है यातैं मैं अपणे शरीरके स्थित करणेविषेभी समर्थ नहीं हूं । यह अपणा वृत्तांत पूर्वही मैनैं आपके प्रति कथन करा था । यातैं अबी हमारेकूं आप वारंवार किस वासतै कहते हो। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं (क्षुद्रं इति) हे अर्जुन जिसकूं हृदयका दौर्बल्य कहे हैं ऐसा जो मनका भ्रमणादिरूप अधैर्य है। सो अधैर्य स्वाश्रयपुरुषके क्षुद्रपणेका कारण होणेतैं क्षुद्ररूप है अथवा सो भ्रमणादिरूप अधैर्य सुगमही निवृत्त करा जावै है । यातैं क्षुद्ररूप है । ऐसे क्षुद्र अधैर्यकूं विचारके बलतैं शीघ्रही परित्याग करिकै इस स्वधर्मरूप युद्धके करणेवासतै तुम सावधान होवो । इहां (हे परंतप) या अर्जुनके संबोधन कहणेकरिकै भगवान्नैं अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन करा । " परं शत्रुं तापयतीति परंतपः " ॥ अर्थ यह । अपणे शत्रुवोंकूं जो संतापकी प्राप्ति करै ताका नाम परंतप है। ऐसा परंतप होइकैभी अत्यंत क्षुद्र अधैर्यरूप शत्रुका नाश नहीं करणा यह बहुत आश्चर्यकी वार्त्ता है। यातैं अपणे परंतप नामके सार्थक करणेवासतै तुमारेंकूं ता अधैर्यरूप शत्रुका नाश अवश्य करणे योग्य है इति ॥ ३ ॥ ❀ ॥ शंका। हे भगवन् इस युद्धका जो मैं परित्याग करता हूं। सो कोई शोकमोहादिकोंके वशतैं नहीं करता हूं। किंतु इस युद्धविषे धर्मरूपता है नहीं उलटा अधर्मरूपता है। या कारणतैं मैं इस युद्धका परित्याग करता हूं। या प्रकारके अर्जुनके अभिप्रायकूं संजय कथन करे है ।

(मू. श्लो.) अर्जुन उवाच ॥ कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन । इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥४॥ (पदच्छेद)
कथं । भीष्मं । अहं । संख्ये । द्रोणं । च । मधुसूदन । इषुभिः । प्रतियोत्स्यामि । पूजार्हौ । अरिसूदन ॥ ४ ॥ (पदार्थः)
हे मधुसूदन हे अरिसूदन इस रणभूमिविषे मैं अर्जुन पूजाकेयोग्य भीष्मकूं तथा द्रोणकूं बाणोंकरिकै किस प्रकार हनन करौंगा किंतु नहीं हनन करौंगा ॥ ४ ॥

टीका। हे भगवन् हमारे कुलविषे वृद्ध तथा गुणोंकरिकै वृद्ध जो यह भीष्मपितामह है । तथा धनुर्विद्याका गुरु जो यह द्रोणाचार्य है। यह दोनों अपणे पिताकी न्यांई पुष्प चंदन अक्षतादिकोंकरिकै पूजन करणेयोग्य हैं । ऐसे भीष्मद्रोणादिक वृद्धोंके साथि क्रीडास्थानविषे आनंदकी प्राप्तिवा-सतै लीलायुद्ध करणाभी हमारेकूं उचित नहीं है। तौ इस रणभूमिविषे तीक्ष्ण शस्त्रोंकरिकै तिन भीष्मद्रोणादिकोंका हनन करणा हमारेकूं किस प्र-कार उचित होवैगा । किंतु तिन भीष्मादिकोंका हनन करणा हमारेकूं उचित नहीं है । इहां यह तात्पर्य है। ग्रह दुर्योधनादिक भीष्मपितामहकूं तथा द्रोणाचार्यकूं छोडिकरिकै तौ हमारे साथि युद्ध करैंगे नहीं। किंतु भीष्मद्रोणकूं सन्मुख करिकैही हमारे साथि युद्ध करैंगे। तहां भीष्म द्रोणा-चार्यके साथि युद्ध करणा धर्म तौ है नहीं। काहेतैं वेदकरिकै विधान करा हुआ जो फलवान् अर्थ है ताका नाम धर्म है। या प्रकारका धर्मका लक्षण जैसे भीष्मद्रोणादिकोंके पूजनविषे घटे है। तैसे तिनोंके साथि युद्ध करणेविषे सो लक्षण घटता नहीं। यातैं सो युद्ध धर्मरूप नहीं है । शंका। हे अ-र्जुन जैसे वृद्धपुरुषोंके साथि युद्ध करणेका शास्त्रविषे विधान नहीं करा है। यातैं ता युद्धविषे धर्मरूपता नहीं संभवती। तैसे ता युद्धका शास्त्रविषे निषेधभी तौ नहीं करा है। यातैं ता युद्धविषे अधर्मरूपताभी नहीं संभवती । शास्त्रकरिकै निषिद्धही अधर्म होवै है। समाधान । हे भगवन् शास्त्रविषे यह कह्या है। श्लोक । "गुरुं हुंकृत्य तुंकृत्य विप्रान्निर्जित्य वादतः। श्मशाने जायते वृक्षः कंकगृध्रोपसेवितः।" अर्थ यह। जो पुरुष अपणे गुरुके प्रति हुंकारशब्द कहे है। तथा तुंकारशब्द कहे है। तथा साधुब्राह्मणोंकूं विवादतैं जय करे है। सो पुरुष मरिकरिकै श्मशानभूमिविषे कंक गृध्र आदिक पक्षीयोंकरिकै सेवित वृक्षशरीरकूं प्राप्त होवै है इति। इत्यादिक शास्त्रोंके वचनोंनैं शब्दमात्रकरिकैभी गुरुका द्रोह निषेध करा है । जबी शब्दमात्र-करिकै गुरुका द्रोहभी अधर्मरूप हुआ। तबी तिन भीष्मद्रोणादिक गुरुवोंके साथि तीक्ष्ण शस्त्रोंकरिकै युद्ध करणा अधर्मरूप है। याके विषे क्या क-हणा है। इहां (हे मधुसूदन हे अरिसूदन) यह दो संबोधन भगवान्के जो अर्जुननैं कहे हैं। तिन दोनोंका अर्थ एकही है । काहेतैं मधुनामा असुरकूं जो हनन करे है ताकूं मधुसूदन कहे हैं । और शत्रुरूप अरियोंकूं जो हनन करे है ताकूं अरिसूदन कहे हैं। यातैं एकवार कहे हुए अर्थ-का पुनः कथन करणेविषे यद्यपि अर्जुनकूं पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै है। तथापि सो अर्जुन तिस कालविषे शोककरिकै व्याकुल था। यातैं ता अर्जु-नकूं पूर्व उत्तर अर्थका स्मरण रह्या नहीं। यातैं पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै नहीं। स्वस्थचित्तवाले पुरुषविषेही सो पुनरुक्तिदोष दिया जावै है। अथवा मधुसूदन अरिसूदन या दो संबोधनोंकरिकै अर्जुननैं भगवानके प्रति यह अर्थ सूचन करा। हे भगवन् आपभी तौ मधु असुरादिक शत्रुवोंकूंही हनन करतेहो । अपणे मि-

त्रोंकूं हनन करते नहीं। यातैं पूजाके योग्य भीष्मद्रोणादिक गुरुवोंकूं तुम हनन करो या प्रकारका वचन कहणा तुमारेकूं उचित नहीं है इति ॥ ४ ॥ ॥ शंका ॥ हे अर्जुन भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य इत्यादिकोंविषे जो पूज्यता है । सा पूज्यता गुरुपणेकरिकै है । ता गुरुपणेतैं विना तिकेंनी पूज्यताविषे दुसरा कोई कारण है नहीं । सो गुरुपणा यद्यपि पूर्वकालविषे तिन भीष्मद्रोणादिकोंविषे रह्या था । तथापि इस कालविषे तिन भीष्मद्रोणादिकोंकूं गुरुरूपकरिकै अंगीकार करणा तुमारेकूं उचित नहीं है । काहेतैं धर्मशास्त्रविषे यह कह्या है । श्लोक । "गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः । उत्पथं प्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते" अर्थ यह । जो गुरु अहंकारादिक दोषोंकरिकै उन्मत्तभावकूं प्राप्त भया है । तथा जो गुरु शास्त्रविहित करणेयोग्य अर्थकूं तथा शास्त्रनिषिद्ध अकरणेयोग्य अर्थकूं जाणता नहीं । तथा जो गुरु शास्त्रनिषिद्ध मार्गविषे प्रवृत्त होवै है ऐसे गुरुका शिष्यनैं परित्यागही करणा इति । यह सर्व लक्षण इन भीष्मद्रोणाचार्यादिकोंविषे घटे हैं । काहेतैं यह भीष्मद्रोणादिक युद्धके गर्वकरिकै महान् उन्मत्तभावकूं प्राप्त हुए हैं । और इन भीष्मद्रोणादिकोंनैं कपट करिकै राज्यका ग्रहण करा है । तथा अपणे शिष्योंके साथि द्रोह करा है । यातैं यह भीष्मद्रोणादिक कार्यअकार्यके ज्ञानतैंभी रहित हैं । या कारणतैंही शास्त्रनिषिद्ध मार्गविषे वर्त्तणेहारे हैं । ऐसे भीष्मद्रोणादिकोंका हनन करणाही श्रेष्ठ है । ऐसी भगवान्की शंकाके हुए अर्जुन कहे है ।

(मू.श्लो.) गुरूनहत्वा हि महानुभावान् श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके । हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुंजीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ५ ॥ (पदच्छेदः)॥ गुरून् । अहत्वा । हि । महानुभावान् । श्रेयः । भोक्तुं । भैक्ष्यं । अपि । इह । लोके । हत्वा । अर्थकामान् । तु । गुरून् । इह । एव । भुंजीय । भोगान् । रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ५ ॥ (पदार्थः) हे भगवन् जिस कारणतैं महानुभाव गुरुवोंकूं नहनन करिकै इस लोकविषे भिक्षाअन्नकूं भोजन करणा भी श्रेष्ठ है इन अर्थकामवाले भी गुरुवोंकूं हनन करिकै मैं इस लोकविषे ही रुधिरलिप्त विषयोंकूं भोगोंगो ॥ ५ ॥

टीका । हे भगवन् भीष्मद्रोणाचार्यादिक गुरुवोंकूं न हनन करिकै हमारा परलोक तौ अवश्यकरिकै सिद्ध होवैगा । और इस लोकविषे तौ तिन भीष्मद्रोणादिक गुरुवोंकूं नहनन करिकै राज्यतैं रहित हुए हम राजावोंकूं शास्त्रनिषिद्ध भिक्षाअन्नभी भोजन करणेकूं अत्यंत श्रेष्ठ है । परंतु तिन

भीष्मद्रोणादिक गुरुवोंकूं हनन करिकै हमारेकूं यह राज्यभी श्रेष्ठ नहीं है। काहेतैं शास्त्रविषे यह कह्या है। श्लोक। "अकृत्वा परसंतापमगत्वा खलमंदिरं। अक्लेशयित्वा चात्मानं यदल्पमपि तद्बहु"। अर्थ यह। दुसरे प्राणियोंकूं संतापकी प्राप्ति न करिकै तथा वेदविरुद्ध नास्तिकोंके मंदिरकूं न जाइकरिकै तथा अपणे आत्माकूं क्लेशकी प्राप्ति नहीं करिकै इस पुरुषकूं जो अल्प पदार्थकीभी प्राप्ति होवै। सा अल्प पदार्थकी प्राप्तिभी इस पुरुषनैं बहुत करिकै मानणी इति। यातैं इन भीष्मद्रोणादिकोंके मारणेकरिकै प्राप्त होणेहारा जो राज्य है। ता राज्यतैं हम इन भीष्मादिकोंकूं न मारिकै या भिक्षाअन्नकूंही बहुतकरिकै मानते हैं। यह सर्व अर्थ अर्जुननैं (हि) या शब्दकरिकै सूचन करा। शंका। हे अर्जुन " गुरोरप्यवलिप्तस्य" या पूर्व उक्त वचनकरिकै इन भीष्मद्रोणादिकोंविषे गुरुपणेका अभाव हम कथन करि आये हैं। यातैं वारंवार तूं इनोंविषे गुरुबुद्धि किसवासतै करता है। ऐसी भगवान्‌की शंकाके हुए सो अर्जुन कहे है। (महानुभावानिति) हे भगवन् श्रवण, अध्ययन, तप, आचार इत्यादिक श्रेष्ठ गुणोंकरिकै महान् है प्रभाव जिनोंका ऐसे जो यह भीष्मद्रोणादिक हैं। जिन भीष्मादिकोंनैं कालकामादिकभी अपणे वश करे हैं। ऐसे महान् पुण्यवाले भीष्मादिकोंकूं पूर्व उक्त क्षुद्र पापकर्मका स्पर्शमात्रभी होवै नहीं यातैं यत्किंचित् अनुचित कर्मकूं देखिकरिकै ऐसे महानुभाव पुरुषोंविषे गुरुत्वबुद्धिका परित्याग करणा हमारेकूं योग्य नहीं है। अथवा (हिमहानुभावान्) यह एकही पद है। ताका यह अर्थ करणा। "हिमं जाड्यमपहंतीति हिमहा आदित्यो अग्निर्वा तस्येव अनुभावः सामर्थ्यं येषां ते हिमहानुभावाः तान्"। अर्थ यह। जडतारूप जो हिम है। ता हिमकूं जो नाश करै ताका नाम हिमहा है। ऐसा सूर्य भगवान् है अथवा अग्नि है। ता सूर्यभगवान्‌के तथा अग्निके समान है सामर्थ्य जिनोंका तिनोंका नाम हिमहानुभाव है। ऐसे अति तेजस्वी भीष्मद्रोणादिकोंकूं ते पूर्व उक्त क्षुद्र पाप दोषकी प्राप्ति करै नहीं। यह वार्त्ता अन्य शास्त्रविषेभी कथन करी हैं। श्लोक। " धर्मव्यतिकरो दृष्ट ईश्वराणां च साहसं। तेजीयसां न दोषाय वन्हेः सर्वभुजो यथा "। अर्थ यह। ईश्वर पुरुषोंका शीघ्रही धर्ममर्यादाका उल्लंघन देखणेविषे आवता है। सो धर्ममर्यादाका उल्लंघन तिन तेजस्वी पुरुषोंकूं दोषकी प्राप्तिवासतै होवै नहीं। जैसे शुद्ध अशुद्ध सर्व पदार्थोंकूं भक्षण करणेहारा जो अग्नि है। तिस अग्निकूं सो अशुद्ध वस्तुका भक्षण दोषकी प्राप्तिवासतै होवै नहीं इति। तैसे इन भीष्मद्रोणादिक तेजस्वी पुरुषोंकूं ते पूर्वउक्त अनुचित कर्मदोषकी प्राप्तिवासतै होवै नहीं॥ शंका। हे अर्जुन यह भीष्मद्रोणादिक जबी अपणे अर्थके लोभकरिकै इस युद्धविषे प्रवृत्त होवैंगे। तबी वेचा है अपणा आत्मा जिनोंनैं ऐसे इन भीष्मद्रोणादिकोंविषे सो पूर्व उक्त महात्म्य किस प्रकार संभवैगा। यह वार्त्ता भीष्मपितामहनैं आपही युधिष्ठिरके प्रति कथन करी है। तहां

श्लोक । " अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् । इति सत्यं महाराज बद्धोस्म्यर्थेन कौरवैः " । अर्थ यह । हे महाराज युधिष्ठिर यह पुरुष अपणे अर्थकाही दास होवै है । और सो अर्थ किसीभी पुरुषका दास होता नहीं । यह जो वार्त्ता शास्त्रविषे कही है । सा वार्त्ता सत्य है । या कारणतैंही मैं अपणे अर्थके लोभकरिकै इन कौरवोंके साथि बांध्या हुआ हूं इति । यातैं अर्थके लोभवाले इन भीष्मद्रोणादिकोंविषे सो पूर्व उक्त महात्म्य संभवता नहीं । ऐसी भगवान्‌की शंकाके हुए सो अर्जुन कहे है (हत्वेति) हे भगवन्, ते भीष्मद्रोणादिक यद्यपि अर्थकी कामनावाले हैं । तथापि ते भीष्मद्रोणादिक हमारी अपेक्षाकरिकै तौ गुरुही हैं यह अर्थ अर्जुननैं पुनः गुरुशब्दके कथनकरिकै सूचन करा । ऐसे अर्थकामनावालेभी गुरुवोंकूं हनन करिकै मैं केवल विषयोंकूंहीं भोगौंगा । ता गुरुवोंके मारणेकरिकै मैं मोक्षकूं तौ प्राप्त होवौंगा नहीं । ते विषयभोगभी केवल इस लोकविषेही हमारेकूं प्राप्त होवैंगे । परलोकविषे ते विषयभोग हमारेकूं प्राप्त होवैंगे नहीं । इस लोकविषेभी श्रेष्ठ पुरुषोंकरिकै अनिंदित ते विषयभोग हमारेकूं प्राप्त नहीं होवैंगे । किंतु अयशरूपी रुधिरकरिकै व्याप्त होणेतैं अत्यंत निंदित ते विषयभोग हमारेकूं प्राप्त होवैंगे । तात्पर्य यह । इन भीष्मद्रोणादिक गुरुवोंके मारणेकरिकै जबी इस लोकविषेभी हमारेकूं इस प्रकारका दुःख होवैगा । तबी परलोकके दुःखका मैं क्या वर्णन करौं । अथवा (अर्थकामान्) यह विषयरूप भोगोंका विशेषण जानना । ता पक्षविषे यह अर्थ करना । इन भीष्मद्रोणादिक गुरुवोंकूं हनन करिकै मैं केवल अर्थकामरूप विषयोंकूंही भोगौंगा । परंतु तिनोंके मारणेकरिकै हमारेकूं कोई धर्मकी तथा मोक्षकी प्राप्ति होवैगी नहीं इति ॥ ५ ॥ ❀ ॥ शंका । हे अर्जुन भिक्षाअन्नका भोजन करणा क्षत्रियोंकूं शास्त्रकरिकै निषिद्ध है । और युद्ध करणा तौ क्षत्रियोंकूं शास्त्रकरिकै विधान करा है । यातैं स्वधर्म होणेतैं युद्धही तुमारेकूं श्रेयकी प्राप्ति करणेहारा है । ऐसी भगवान्‌की शंकाके हुए अर्जुन कहे है ।

(मू. श्लो.) न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः । यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः॥६॥ (पदच्छेदः)॥ नच । एतत् । विद्मः । कतरत् । नः । गरीयः । यद्वा । जयेम । यदिवा । नः । जयेयुः । यान् । एव । हत्वा । न । जिजीविषामः । ते । अवस्थिताः । प्रमुखे । धार्तराष्ट्राः ॥ ६ ॥ (पदार्थः) हे भगवन् हमारेकूं भिक्षा और युद्ध इन दोनोंके मध्यविषे कौन धर्म श्रेष्ठ है इस वार्त्ताकूं हम नहीं जानते हैं और युद्धविषे प्रवृत्त हुएभी क्या हम जीतैंगे

अथवा[९] हमारेकूं[१०] यह कौरव जीतैंगे[११] किंवा जिनें[१२] भीष्मादिक बांधवोंकूं हनन[१३] करिकै हम जीवनेकीभी[१४] इच्छा नहीं[१५] करते हैं
ते[१६] भीष्मद्रोणादिक[१७] बांधवही[१८] हमारे[१९] सन्मुख स्थित[२०] हुए हैं ॥ ६ ॥

टीका । हे भगवन् भिक्षाअन्नका भोजन तथा युद्ध या दोनों धर्मोंविषे हमारेकूं कौन धर्म श्रेष्ठ है । क्या हिंसातैं रहित होणेतैं भिक्षाका अन्नही श्रेष्ठ है । अथवा स्वधर्म होणेतैं युद्धही श्रेष्ठ है । या वार्त्ताकूं हम जानि सकते नहीं । शंका । हे अर्जुन भिक्षाअन्नका भोजन तथा युद्ध या दोनों धर्मोंविषे स्वधर्म होणेतैं युद्धही तुमारेकूं श्रेष्ठ है । ऐसी भगवान्की शंकाके हुए अर्जुन कहे है। (यद्वेति) हे भगवन् जो कदाचित् हम युद्धविषे प्रवृत्तभी होवैं । तौभी हमही इन भीष्मद्रोणादिकोंकूं जय करैंगे अथवा यह भीष्मद्रोणादिकही हमारेकूं जय करैंगे । इस वार्त्ताकूंभी हम जाणते नहीं । जो कदाचित् यह भीष्मद्रोणादिकही हमारेकूं जीतैंगे । तौ अंतविषे हमारेकूं भिक्षा मागिकैही भोजन करणा पडैगा । अथवा हमारा मरण होवैगा । इन दोनों वार्त्तावोंविषे एक वार्त्ता तौ अवश्यकरिकै होवैगी । यातैं ता युद्धतैं प्रथमही भिक्षा मागिकै भोजन करणा हमारेकूं श्रेष्ठ है । शंका । हे अर्जुन हमारा जय होवैगा । अथवा इन भीष्मद्रोणादिकोंका जय होवैगा या प्रकारका संशय तूं किसवासतै करता है । मैं कृष्णभगवान् तुमारी सहायताविषे हूं यातैं तुमाराही निश्चयकरिकै जय होवैगा । ऐसी भगवान्की शंकाके हुए अर्जुन कहे है (यानेवेति) हे भगवन् जो कदाचित् आपकी सहायताकरिकै हमारा जयभी होवै । तौभी सो जय अंततैं हमारा पराजयही है । काहेतैं जिन भीष्मद्रोणादिक बांधवोंकूं हनन करिकै हम अपणे जीवनमात्रकीभी इच्छा नहीं करते । तौ तिनोंकूं हननकरिकै हम विषयभोगोंकी इच्छा कैसे करैंगे किंतु नहीं करैंगे । ते भीष्मद्रोणादिकही हम युद्धविषे मरैंगे या प्रकारका निश्चय करिकै हमारे सन्मुख स्थित हुए हैं । ऐसे प्रिय बांधवोंकूं नाश करिकै जो जय होणा है। सो जयभी पराजयरूपही है । यातैं भिक्षाअन्नके भोजनतैं इस युद्धविषे श्रेष्ठता नहीं है इति । इहां किसी टीकाकारनैं (न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो) या प्रथम पादका यह अर्थ कथन करा है । हमारे मध्यविषे कौन सैना अधिक है या वार्त्ताकूं हम जानते नहीं। सो यह अर्थ संभवता नहीं। काहेतैं इस श्लोकतैं आगले श्लोकविषे (पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः) या वचनकरिकै अर्जुननैं धर्मविषेही संशय दिखाया है । ता वचनके अनुसार इस श्लोकविषेभी भिक्षाअन्न और युद्ध या दोनों धर्मोंविषेही अर्जुनका संशय संभवै है । सैनाकी अधिकताविषे संशय संभवै नहीं । किंवा (न चैतद्विद्मः) या वचनकरिकै जो सैनाके अधिकताका सं-

॥ ५ ॥

शय अंगीकार करीये। तौ ता सैनाके अधिकताके संशयकरिकैही जयका संशय सिद्ध होइ सकै है। यातैं (यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः) या द्वितीयपादकरिकै कथन करा जो जयका संशय है सो व्यर्थ होवैगा। या कारणतैं प्रथम व्याख्यानही बहुत टीकाकारोंकूं संमत है इति ॥ ६ ॥ ❀ ॥ इहां पूर्वग्रंथकरिकै संसारके दोषोंका निरूपण करा। ताकरिकै अधिकारी पुरुषके विशेषण कथन करे। तहां (न च श्रेयोनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे) ३१ इस वचनविषे रणविषे मरणकूं प्राप्त हुए शूरवीरकूं योगयुक्त संन्यासीयोंके समान योगक्षेमकी प्राप्ति कथन करी। ता कहणेकरिकै "अन्यत् श्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयः" या कठवल्लीश्रुतिकरिकै सिद्ध मोक्षरूप श्रेयका कथन करा ता मोक्षरूप श्रेयतैं इतर पदार्थोंविषे अर्थतैं अश्रेयरूपता कथन करी। ता कहणेकरिकै नित्यअनित्य वस्तुका विवेक दिखाया। और (न कांक्षे विजयं कृष्ण) ३२ इस श्लोककरिकै इस लोकके विषयजन्य सुखतैं वैराग्य दिखाया। और (अपि त्रैलोक्यराजस्य हेतोः) ३५ या वचनकरिकै स्वर्गादिक लोकोंके विषयजन्य सुखतैं वैराग्य दिखाया। और (नरके नियतं वासो भवति) ४४ या वचनकरिकै या स्थूल शरीरतैं भिन्न करिकै आत्माका स्वरूप दिखाया। और (किं नो राज्येन गोविंद) ३२ या वचनकरिकै मनका निग्रहरूप शम दिखाया। और (किं भोगैर्जीवितेन वा) ३२ या वचनकरिकै इंद्रियोंका निग्रहरूप दम दिखाया। और (यद्यप्येते न पश्यंति) ३८ या वचनकरिकै निर्लोभता दिखाई। और (तन्मे क्षेमतरं भवेत्) ४६ या वचनकरिकै तितिक्षा दिखाई। इस प्रकार या गीताशास्त्रके प्रथम अध्यायका अर्थ संन्यासके साधनोंका सूचन करे है। और इस द्वितीय अध्यायविषे तौ (श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लेके) ५ या वचनकरिकै भिक्षाअन्नके भोजनकरिकै उपलक्षित संन्यासका निरूपण करा। अब ब्रह्मसाक्षात्कारकी प्राप्तिवासतै श्रुतिनैं कथन करा जो ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप शिष्यका गमन है ताका निरूपण करे हैं। काहेतैं जिस पुरुषनैं संसारके सर्व दोषोंकूं जान्या है। तथा जो पुरुष इस लोकके तथा परलोकके विषयजन्य सुखोंतैं अत्यंत वैराग्यकूं प्राप्त भया है। तिसतैं अनंतर जो पुरुष विधिपूर्वक ब्रह्मवेत्ता गुरुके शरणकूं प्राप्त भया है। ऐसे साधनसंपन्न पुरुषकूंही ब्रह्मविद्याके ग्रहण करणेका अधिकार है। तहां पूर्वग्रंथविषे भीष्मद्रोणादिकोंके संकटके वशतैं "व्युत्थायाऽथ भिक्षाचर्यं चरंति" या श्रुतिकरिकै सिद्ध भिक्षाचर्याविषे अर्जुनकी अभिलाषा दिखाई। अब विधिपूर्वक ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप अर्जुनका गमनभी तिन भीष्मद्रोणादिकोंके संकटके व्याजकरिकैही निरूपण करे है। ॥ ५ ॥

(मू. श्लो.) कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः। यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेहं शाधि मां त्वां प्रपन्नं ॥ ७ ॥ (पदच्छेदः) कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः। पृच्छामि। त्वाम्। धर्मसंमूढचेताः। यत्। श्रेयः। स्यात्। निश्चितं।

ब्रूहि[११] । तत्[९] । मे[१०] । शिष्यः[१४] । ते[१३] । अहं[१२] । शाधि[१८] । मां[१७] । त्वां[१५] । प्रपन्नं[१६] ॥ ७ ॥ (पदार्थः) हे भगवन् कार्पण्य[१]दोषकरिकै तिरस्कारकूं प्राप्त हुआ है स्वभाव जिसका तथा धर्म[२]विषयक संशयकरिकै व्याप्त हुआ है चित्त जिसका ऐसा मैं अर्जुन तुमारे[३]प्रति श्रेय पूछता[४] हूं यातें जो[५] निश्चित[६] श्रेय[७] होवै[८] सो[९] हमारे[१०]प्रति कथन[११] करो मैं[१२] तुमारा[१३] शिष्य[१४] हूं यातें तुमारे[१५] शरण[१६]कूं प्राप्त हुए हमारे[१७]कूं आप शिक्षा[१८] करो ॥ ७ ॥

टीका । इस लोकविषे जो पुरुष यत्किंचित् धनके हानिकूंभी नहीं सहारि सकै है ता पुरुषकूं कृपण कहे हैं । ता कृपण पुरुषके समान होणेतैं मोक्षरूप पुरुषार्थकी प्राप्तितैं रहित सर्व अनात्मवेत्ता अज्ञानी पुरुष कृपण हैं । तहां श्रुति । " यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणः " । अर्थ यह । हे गार्गि, अधिकारी मनुष्यशरीरकूं प्राप्त होइकै जो पुरुष इस अक्षर आत्माकूं न जानिकरिकै इस लोकतैं जावै है । सो अज्ञानी पुरुष कृपणही है इति । तहां स्मृति । " कृपणोऽजितेंद्रियः " । अर्थ यह । जिस पुरुषनैं अपणे इंद्रियोंकूं नहीं जीत्या है । सो पुरुष कृपणही है इति । इत्यादिक श्रुतिस्मृतियोंके प्रमाणतैं अज्ञानी पुरुषोंविषेही कृपणरूपता सिद्ध होवै है । ऐसे कृपण पुरुषोंविषे रहणेहारा जो देहादिक अनात्मपदार्थोंका अध्यास है । ता अध्यासका नाम कार्पण्य है । ता कार्पण्यकरिकै उत्पन्न भया जो इस जन्मविषे यहही हमारे बांधव हैं तिनोंके नाश हुए हम जीविकरिकै क्या करैंगे या प्रकारका अभिनिवेशरूप ममतालक्षणदोष है । ता दोषकरिकै तिरस्कारकूं प्राप्त हुआ है युद्धका उद्यमरूप स्वभाव जिसका ऐसा जो मैं अर्जुन हूं । तथा धर्मविषे निर्णय करणेहारे प्रमाणके अदर्शनतैं क्या इन भीष्मद्रोणादिकोंका हनन करणाही हमारा धर्म है अथवा इन भीष्मादिकोंका पालन करणा हमारा धर्म है तथा क्या पृथिवीका परिपालन करणा हमारा धर्म है अथवा पूर्व प्राप्त वनविषे निवासही हमारा धर्म है इत्यादिक अनेक संशयोंकरिकै व्याप्त है चित्त जिसका ऐसा जो मैं अर्जुन हूं । सो मैं अर्जुन तुमारेप्रति अपणा श्रेय पूछता हूं । यातैं जो परमपुरुषार्थरूप श्रेय एकांतिकरूप तथा आत्यंतिकरूप निश्चयकरिकै होवै । सो श्रेय आप हमारे प्रति कथन करो । तहां स्वसाधनोंतैं अनंतर अवश्यभावीपणेका नाम एकांतिकपणा है । और एकवार उत्पन्न हुएका पुनः कदाचित्भी नाश नहीं होणा याका नाम आत्यंतिकपणा है । जैसे लोकविषे औषधके किये हुए कदाचित् रोगकी निवृत्ति नहींभी होवै है । और जो कदाचित् ता औषधकरिकै रोगकी निवृत्ति होवैभी है । तौभी पुनः रोगकी उत्पत्ति करिकै सा रोगकी निवृत्ति नाश होइ जावै है । इस प्रकार यागके कीये हुएभी किसी प्रतिबंधके वशतैं स्वर्गकी प्राप्ति नहींभी होवै है । और ता यागक-

रिकै प्राप्त हुआभी स्वर्ग दुःखकरिकै मिश्रितही होवै है । तथा नाशकूं प्राप्त होवै है । यातैं रोगकी निवृत्तिविषे तथा स्वर्गकी प्राप्तिविषे सो एकांतिकपणा तथा आत्यंतिकपणा संभवता नहीं । और ब्रह्मात्मसाक्षात्कारतैं अनंतर सो परमपुरुषार्थरूप श्रेय अवश्यकरिकै प्राप्त होवै है । यातैं ता श्रेयविषे एकांतिकपणाभी है । और एकवार प्राप्त हुआ सो श्रेय कदाचित्भी नाशकूं प्राप्त होवै नहीं । यातैं ता श्रेयविषे आत्यंतिकपणाभी है ऐसे श्रेयका हमारेप्रति उपदेश करो । शंका । हे अर्जुन श्रुतिविषे यह कह्या है । " नापुत्रायाशिष्याय वै पुनः " । अर्थ यह । जो पुरुष पुत्रभावतैं तथा शिष्यभावतैं रहित होवै । ता पुरुषके प्रति ब्रह्मविद्याका उपदेश नहीं करणा इति । और तूं तौ हमारा सखा है । हमारा शिष्य तूं है नहीं । यातैं तुमारेप्रति मैं कैसे श्रेयका उपदेश करौं । ऐसी भगवान्की शंकाके हुए अर्जुन कहे है (शिष्यस्तेहमिति) हे भगवन् आपकी शिक्षाके योग्य होणेतैं मैं आपका शिष्यही हूं । मैं आपका सखा नहीं हूं । काहेतैं समानज्ञानवाले पुरुषोंकाही परस्पर सखाभाव होवै है न्यून अधिक ज्ञानवाले पुरुषोंका परस्पर सखाभाव होवै नहीं । और मैं तुमारी अपेक्षाकरिकै अत्यंत न्यूनज्ञानवाला हूं । यातैं मैं आपका सखा नहीं हूं । किंतु शिष्य हूं । यातैं तुमारे शरणकूं प्रात हुआ जो मैं हूं । तिस मैं शिष्यकूं आप कृपा करिकै श्रेयका उपदेश करो । शिष्यभावतैं रहितपणेकी शंकाकरिकै आप हमारी उपेक्षा मत करौ । इतनैकरिकै ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप शिष्यके गमनकूं बोधन करणेहारी इन दोनों श्रुतियोंका अर्थ निरूपण करा । ते दोनों श्रुति यह हैं । " तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं इति भृगुर्वै वारुणिर्वरुणं पितरमुपससार अधीहि भगवो ब्रह्मेति " ॥ अर्थ यह । ब्रह्मसाक्षात्कारकी प्राप्तिवासतै यह अधिकारी पुरुष अपणे हस्तोंविषे समिदादिक भेटाकूं लेकरिकै श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके समीप जावै इति । और वरुणका पुत्र भृगुऋषि ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिवासतै अपणे वरुणपिताके समीप जाता भया तहां जाइकै हे भगवन् हमारेप्रति ब्रह्मका उपदेश करो या प्रकारका प्रश्न करता भया इति । यह वरुणभृगुका संवाद आत्मपुराणके दशम अध्यायविषे हम विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं । इति ॥ ७ ॥ ❀ ॥ शंका । हे अर्जुन तूं सर्व शास्त्रोंका वेत्ता पंडित है यातैं तूं आपही श्रेयका विचार कर । तूं हमारा शिष्य किसवासतै होता है ऐसी भगवान्की शंकाके हुए अर्जुन कहे है ।

(मू. श्लो.) नहि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमिंद्रियाणां । अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यं ॥ ८ ॥ (पदच्छेदः) नहि । प्रपश्यामि । मम । अपनुद्यात् । यत् । शोकं । उच्छोषणं । इंद्रियाणां । अवाप्य । भूमौ । असं-

पत्नमृद्धं । राज्यं[11] । सुराणां[14] । अपि[16] । च[13] । आधिपत्यं[15] ॥ ८ ॥ (पदार्थः) हे भगवन् जो[1] श्रेय हमारे[2] इंद्रियोंके[3] संताप[4] करणेहारे शोकके[5] निवृत्त[6] करै तिस श्रेयकूं मैं नहीं देखता[7] हूं इस[8] भूमिविषे शत्रुवोंतैं[9] रहित तथा धनधान्यकरिकै युक्त राज्यकूं[11] प्राप्त[12] होइकै तथा[13] देवतावोंके[14] अधिपतिपणेकूं[15] भी[16] प्राप्त होइकै मैं ता श्रेयकूं नहीं देखता हूं ॥ ८ ॥

टीका । हे भगवन् जो श्रेय प्राप्त होइकै हमारे शोककूं निवृत्त करै । ता श्रेयकूं मैं जानता नहीं । या कारणतैं हमारे प्रति आप ता श्रेयका उपदेश करो । इतनै कहणेकरिकै अर्जुननैं या श्रुतिका अर्थ सूचन करा “ सोहंभगवः शोचामि तं मां भगवाञ्छोकस्य पारं तारयतु इति ” । अर्थ यह । हे भगवन् सनत्कुमार आत्मवेत्ता पुरुष शोककूं तरे है । यह वार्त्ता हमनैं आपसरीखे विद्वान् पुरुषोंके मुखतैं श्रवण करी है । और मैं नारद तौ शोककूं प्राप्त होता हूं । यातैं मैं आत्मवेत्ता नहीं हूं । ऐसे मैं नारदकूं आप शोकके पारकूं प्राप्त करौ । तात्पर्य यह । ब्रह्मविद्याका उपदेश करिकै हमारे शोककूं आप नाश करो इति । यह सनत्कुमारनारदका संवाद आत्मपुराणके त्रयोदशे अध्यायविषे हम विस्तारतैं निरूपण करि आये हैं । शंका । हे अर्जुन ता शोकके नहीं निवृत्त हुएभी तुमारी क्या हानि है । ऐसी भगवान्की शंकाकरिकै अर्जुन ता शोकका विशेषण कहे है (इंद्रियाणामुच्छोषणमिति) हे भगवन् सो शोक सर्व कालविषे हमारे इंद्रियोंकूं संतापकी प्राप्ति करणेहारा है । ऐसे शोकके विद्यमान हुए हमारी महान् हानि है । यातैं ता शोककी निवृत्ति अवश्य करी चाहिये । शंका । हे अर्जुन जो तूं इस युद्धविषे प्रवृत्त होवैगा । तौ तुमारे शोककी निवृत्ति अवश्य करिकै होवैगी । तहां इस युद्धविषे जो तुमारा जय होवैगा । तौ राज्यकी प्राप्तिकरिकै तुमारे शोककी निवृत्ति होवैगी और जो तूं युद्धविषे मृत्युकूं प्राप्त होवैगा । तौ स्वर्गकी प्राप्तिकरिकै तुमारे शोककी निवृत्ति होवैगी । यातैं इस युद्धकूं छोडिकै शोकके निवृत्तिवासतै तूं दूसरा उपाय किसवासतै खोजता है । ऐसी भगवान्की शंकाके हुए अर्जुन कहे है । (अवाप्य भूमाविति) हे भगवन् या भूमिविषे शत्रुवोंतैं रहित तथा धनधान्यादिक पदार्थोंकरिकै युक्त ऐसे राज्यकूं प्राप्त होइकै तथा इंद्रतैं आदि लैके हिरण्यगर्भपर्यंत सर्व देवतावोंके ऐश्वर्यकूं प्राप्त होइकै जो कदाचित् मैं स्थित होवौं । तौभी जो श्रेय हमारे शोककूं निवृत्तकरणेहारा है । ता श्रेयकूं मैं देखता नहीं । यातैं सो शोकके निवृत्तकरणेहारा श्रेय इस युद्धतैं कोई भिन्नही है । तात्पर्य यह । इस लोकके विषयभोगोंविषे तथा स्वर्गादिक लोकोंके विषयभोगोंविषे श्रुतिप्रमाणकरिकै तथा युक्तिरूप अनुमानप्रमाणकरिकै अनित्यताही सिद्ध होवै है ।

यातैं तिन अनित्य भोगोंतैं शोककी निवृत्ति संभवै नहीं। उलटा ते भोग तीन कालविषे या पुरुषकूं शोककीही प्राप्ति करे हैं। तहां न प्राप्त हुए ते भोग अपणी इच्छाकरिकै या पुरुषकूं शोककी प्राप्ति करे हैं । और प्राप्तिकालविषे ते भोग पराधीनताकरिकै तथा नाशके भयकरिकै या पुरुषकूं शोककी प्राप्ति करे हैं । और अपणे नाशंकालविषे ते भोग वियोगकरिकै या पुरुषकूं शोककी प्राप्ति करे हैं। ऐसे शोकके करणेहारे अनित्य भोगोंकरिकै शोककी निवृत्ति संभवै नहीं । तहां श्रुति । "तद्यथेह कर्मजितो लोकः क्षीयते एवमेवामुत्रपुण्यजितो लोकः क्षीयते इति" । अर्थ यह । जैसे कर्मकरिकै प्राप्त होणेतैं इस लोकके पदार्थ नाशकूं प्राप्त होवै हैं । तैसे पुण्यकर्मोंकरिकै प्रात होणेतैं स्वर्गादिक लोकोंके पदार्थभी नाशकूं प्राप्त होवै हैं इति । या श्रुतिकरिकै सर्व भोगोंविषे अनित्यताही सिद्ध होवै है । और इस लोकके तथा परलोकके सर्व पदार्थ अनित्य होणेकूं योग्य हैं । कार्य होणेतैं जो जो कार्य होवै है सो सो अनित्यही होवै है। जैसे प्रसिद्ध घटादिक पदार्थ हैं । या प्रकारके अनुमानरूप युक्तिकरिकैभी तिन सर्व भोगोंविषे अनित्यताही सिद्ध होवै है । और इस लोकके पदार्थोंका नाश तौ सर्व लोकोंकूं प्रत्यक्षही प्रतीत होवै है । ऐसे अनित्य पदार्थोंकी प्राप्तिकरिकै शोककी निवृत्ति संभवै नहीं । यातैं शोककी निवृत्तिवासतैं हमारेकूं युद्ध करणा योग्य नहीं है । इतनैकरिकै इस लोक परलोकके भोगोंका वैराग्य अधिकारीका विशेषणरूप करिकै वर्णन करा इति ॥ ८ ॥ ❀ ॥ हे संजय इस प्रकारके वचनोंकूं कहिकरिकै सो अर्जुन क्या करता भया । ऐसी धृतराष्ट्रकी आकांक्षाके हुए संजय कहे है ।

(मू. श्लो.) संजय उवाच । एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतपः । न योत्स्य इति गोविंदमुक्त्वा तूष्णीं बभूवह ॥ ९ ॥
(पदच्छेदः) एवं । उक्त्वा । हृषीकेशं । गुडाकेशः । परंतपः । न । योत्स्ये । इति । गोविंदं । उक्त्वा । तूष्णीं । बभूव । ह ॥ ९ ॥
(पदार्थः) हे धृतराष्ट्र शत्रुवोंकूं संताप करणेहारा तथा निद्रांकूं जीतणेहारा अर्जुन हृषीकेश भगवान्के प्रति इस प्रकारके वचन कहिकरिकै अंतविषे मैं नहीं युद्ध करौंगा या प्रकारका वचन ता गोविंदके प्रति कथन करिकै तूष्णीभावकूं प्राप्त होता भया ॥ ९ ॥

टीका । गुडाका नाम निद्राका है ता निद्राकूं जो अपणे वश करे है । ताकूं गुडाकेश कहे हैं । दूसरे गुडाकेश शब्दके अर्थ प्रथम अध्यायविषे कथन करि आये हैं । ऐसे निद्रारूप आलस्यतैं रहित तथा अपणे शत्रुवोंकूं संतापकी प्राप्ति करणेहारा जो अर्जुन है । सो अर्जुन हृषीक नामा इंद्रियोंके प्र-

वर्त्तक अंतर्यामी कृष्णभगवान्के प्रति ते पूर्व उक्त वचन कहिकरिकै अंतविषे मैं इन भीष्मद्रोणादिकोंके साथि कदाचित्भी युद्ध नहीं करौंगा या प्रकारका वचन ता गोविंदके प्रति कहिकरिकै तूष्णीभावकूं प्राप्त होता भया। इहां गोविंद शब्दका या प्रकारका अर्थ शास्त्रविषे कथन करा है। गोभिर्वेदांतवाक्यैरेव विंदते लभ्यते इति गोविंदः। अर्थ यह। गोशब्द "तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि" इत्यादिक वेदांतवाक्योंका वाचक है। तिन वेदांतवाक्योंकरिकैही जो प्राप्त होवै ताकूं गोविंद कहे हैं। अथवा "गांवेद् लक्षणां वाणीं विंदतीति गोविंदः"। अर्थ यह। ऋग्, यजुष्, साम, अथर्वण या चारि वेदरूप वाणीकूं जो भली प्रकारतैं जानै है ताकूं गोविंद कहे हैं। इतनै कहणेकरिकै सर्व वेदोंके उपादानकारणत्वरूपकरिकै कृष्णभगवान्विषे सर्वज्ञता सूचन करी। और इस श्लोकके आदिविषे (एवमुक्त्वा) या वचनकरिकै सो अर्जुन (कथं भीष्ममहं संख्ये) इत्यादिक वचनोंकरिकै युद्धके स्वरूपकी अयोग्यता कथन करता भया। और तिसतैं अनंतर (न योत्स्ये) या वचनकरिकै सो अर्जुन ता युद्धके फलके अभावकूं कथन करता भया। तिसतैं अनंतर सो अर्जुन तूष्णीभावकूं प्राप्त होता भया। तात्पर्य यह। युद्ध करणेवासतै अर्जुननैं जो पूर्व नेत्रादिक बाह्य इंद्रियोंका दर्शनादिरूप व्यापार करा था। ता सर्व व्यापारकी निवृत्तिकरिकै निर्व्यापार होता भया। यहही अर्जुनका तूष्णीभाव जानणा। केवल वाणीमात्रका निरोध तूष्णीभाव नहीं जानणा। इहां (बभूवह) या वचनविषे स्थित जो हशब्द है। ता हशब्दकरिकै यह अर्थ सूचन करा। स्वभावतैंही आलस्यतैं रहित तथा सर्व शत्रुवोंकूं संताप करणेहारा जो अर्जुन है। तिस अर्जुनविषे आगंतुक आलस्य तथा शत्रुवोंका अतापकत्व कदाचित्भी नहीं रहि सकैगा इति। और सर्वज्ञताकूं सूचन करणेहारा जो गोविंदपद है। तथा सर्वशक्तिसंपन्नताकूं सूचन करणेहारा जो हृषीकेश पद है। ता दोनों पदोंकरिकै ता कृष्णभगवान्विषे अर्जुनके शोकमोहकी निवृत्ति करणेमैं आयासका अभाव सूचन करा। तात्पर्य यह। सर्व शक्तिसंपन्न सर्वज्ञ कृष्णभगवानकूं अत्यंत अल्प शोकमोहकी निवृत्ति करणेविषे क्या परिश्रम होवै है इति ॥ ९ ॥ ❀ ॥ तहां युद्धकी उपेक्षावान् अर्जुनकी भगवान्नैंभी उपेक्षाही करी होवैगी या प्रकारकी जो धृतराष्ट्रकी दुराशा है। ता दुराशाके निवृत्त करणेवासतै सो संजय ता धृतराष्ट्रके प्रति युद्धविषे अर्जुनकी उपेक्षा देखिकरिकैभी सो कृष्णभगवान् ता अर्जुनकी उपेक्षा नहीं करता भया या प्रकारका वचन कहे है।

(मू. श्लो.) तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत। सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदंतमिदं वचः ॥ १० ॥ (पदच्छेदः) तं उवाच।

हृषीकेशः । प्रहसन् । इव । भारत । सेनयोः । उभयोः । मध्ये । विषीदंतं । इदं । वचः ॥ १० ॥ (पदार्थः) हे धृतराष्ट्र सो कृष्णभगवान् दोनों सेनावोंके मध्यविषे विषादकूं प्राप्त हुए तिस अर्जुनके प्रति प्रहास करते हुएकी न्यांई यह वक्ष्यमाण वचन कहता भया ॥ १० ॥

टीका । हे भरतवंशविषे उत्पन्न हुआ धृतराष्ट्र पूर्वयुद्धका उद्यम करिकै दोनों सेनावोंके मध्यविषे आइकै ता उद्यमके विरोधी मोहरूप विषादकूं प्राप्त भया जो अर्जुन है । ता अर्जुनका सो अनुचित आचरण प्रगट करिकै लज्जारूप समुद्रविषे डुबावते हुएकी न्यांई सो अंतर्यामी भगवान् ता अर्जुनके प्रति परम गंभीर है अर्थ जिसका तथा अनुचित आचरणकूं प्रकाश करणेहारा जो अशोच्यान् इत्यादिक वक्ष्यमाण वचन है ता वचनकूं कहता भया । इहां (प्रसहन् इव) या वचनविषे स्थित जो (इव) यह शब्द है । ताका यह अभिप्राय है । अन्य पुरुषका अनुचित आचरण प्रगट करिकै ताके लज्जाकूं उत्पन्न करणा याका नाम प्रहास है । और सा लज्जा दुःखरूपही होवै है यातैं जो पुरुष जिस पुरुषके द्वेषका विषय होवै है । सो पुरुषही तिस पुरुषके प्रहासका मुख्य विषय होवै है । और अर्जुन तौ भगवान्के द्वेषका विषय है नहीं । किंतु सो अर्जुन भगवान्के कृपाका विषय है और अर्जुनके अनुचित आचरणका जो प्रकाश करणा है । सोभी ता अर्जुनके लज्जाके उत्पत्तिका हेतु नहीं है । किंतु सो अनुचित आचरणका प्रकाश ता अर्जुनके विवेकके उत्पत्तिका हेतु है । यातैं अर्जुनविषे सो प्रहास गौण है मुख्य नहीं । तात्पर्य यह । जैसे कोई पुरुष अपणे शत्रुके लज्जाकी उत्पत्ति करणेवासतै ताके अनुचित आचरणका प्रकाश करे है । तैसे सो श्रीकृष्णभगवान्भी अर्जुनके विवेककी उत्पत्ति करणेवासतै ता अर्जुनके अनुचित आचरणकूं प्रकाश करता भया । और लज्जाकी उत्पत्ति तौ अनुचित आचरणके प्रकाशतैं अनंतर अवश्यही होवै है । यातैं सा लज्जाकी उत्पत्ति होवो अथवा नहीं होवो । परंतु ता लज्जाकी उत्पत्ति करणेविषे भगवान्का तात्पर्य नहीं है । केवल विवेककी उत्पत्तिविषेही भगवान्का तात्पर्य है । या सर्व अर्थका इवशब्दकरिकै सूचन करा । और (सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदंतं) यह जो अर्जुनका विशेषण कह्या है । ताका यह अभिप्राय है । युद्धके आरंभतैं पूर्वही अपणे गृहविषे स्थित हुआ तूं जो कदाचित् युद्धकी उपेक्षा करता । तौ यह तुमारा अनुचित आचरण नहीं कह्या जाता । परंतु तूं तौ महान् उत्साहपूर्वक इस युद्धभूमिविषे आइकै इस युद्धकी उपेक्षा करता भया है । यातैं यह तुमारा बहुत अनुचित आचरण

कह्या जावै है इति । यह वार्त्ता अशोच्यान् इत्यादिक वचनोंविषे आगे स्पष्ट होवैगी इति ॥ १० ॥ ❀ ॥ तहां अर्जुनकी युद्धरूप स्वधर्मविषे पूर्वस्वभावतैं उत्पन्न हुईभी प्रवृत्ति दो प्रकारके मोहकरिकै तथा ता मोहजन्य शोककरिकै प्रतिबद्ध होती भई । यातैं पुनः ता युद्धरूप स्वधर्मविषे अर्जुनकी प्रवृत्ति करावणेवासतै ता अर्जुनका सो दो प्रकारका मोह अवश्यकरिकै दूर करणेकूं योग्य है । तहां सर्व संसारधर्मौंतैं रहित स्वप्रकाश परमानंदस्वरूप आत्माविषे स्थूल सूक्ष्म दोनों शरीर तथा तिन दोनों शरीरोंका कारण रूप अविद्या या तीनों उपाधियोंके अविवेककरिकै जो मिथ्यारूप संसारविषे सत्यत्व तथा आत्मधर्मत्व आदिक प्रतीति है । सो प्रथम मोह है । सो मोह सर्व प्राणीमात्रविषे रहे है । यातैं सो मोह साधारण है । और युद्धरूप स्वधर्मविषे हिंसादिकोंकी बाहुल्यताकरिकै जो अधर्मत्वकी प्रतीति है । सो दूसरा मोह है । यह दूसरा मोह करुणादिक दोषकरिकै केवल अर्जुनकूंही प्राप्त भया है । यातैं दूसरा मोह असाधारण है । तहां स्थूल सूक्ष्म कारण या तीन उपाधियोंके विवेककरिकै प्राप्त भया जो शुद्ध आत्मस्वरूपका बोध है । सो बोध प्रथम मोहका निवर्त्तक है । यातैं सो बोध सर्व प्राणीमात्रकूं साधारण है। और युद्धविषे यद्यपि हिंसादिक होवै हैं। तथापि सो युद्ध क्षत्रिय राजावोंका स्वधर्म है। यातैं ता युद्धविषे अधर्मरूपता नहीं है। या प्रकारका जो बोध है। सो बोध दूसरे मोहका निवर्त्तक है। यह दूसरा बोध केवल अर्जुनके प्रतिही है। यातैं यह दूसरा बोध असाधारण है। इस प्रकार दो प्रकारके बोधकरिकै जबी दो प्रकारके मोहकी निवृत्ति होवै है। तबी ता मोहरूप कारणके निवृत्त हुएतैं अनंतर ताके शोकरूप कार्यकी आपही निवृत्ति होइ जावै है। ता शोककी निवृत्तिविषे किसी दूसरे साधनकी अपेक्षा होवै नहीं। या प्रकारके अभिप्रायकरिकै सो श्रीकृष्णभगवान् ता दोनों प्रकारके मोहका कथन करता हुआ ता अर्जुनके प्रति कहे हैं।

(मू. श्लो.) श्रीभगवानुवाच । अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे । गतासूनगतासूंश्च नानुशोचंति पंडिताः ॥ ११ ॥

(पदच्छेदः) अशोच्यान् । अन्वशोचः । त्वं । प्रज्ञावादान् । च । भाषसे । गतासून् । अगतासून् । च । न । अनुशोचंति । पंडिताः ॥ ११ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन शोक करणेके अयोग्य भीष्मद्रोणादिकोंकूं तूं शोक करता है । तथा । बुद्धिमान् पुरुषोंकरिकै नहीं कहणे योग्य वचनोंकूं तूं कथन करता है । और पंडित पुरुष तो प्राणोंतैं रहित बांधवोंकूं तथा प्राणयुक्त बांधवोंकूं नहीं शोक करते ॥ ११ ॥

टीका । हे अर्जुन आत्मदृष्टिकरिकै तथा शरीरदृष्टिकरिकै शोक करणेके नहीं योग्य जो यह भीष्मद्रोणादिक हैं तिनोंका तूं पंडित होइकैभी शोक करता है । ते भीष्मद्रोणादिक हमारे निमित्त मृत्युकूं प्राप्त होते हैं। तिन भीष्मद्रोणादिकोंतैं विना मैं राज्यसुखादिकोंकूं क्या करौंगा या प्रकारका शोक (दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण) इत्यादिक वचनोंकरिकै तूं करता भया है । सो शोक करणा तुमारेकूं उचित नहीं है । काहेतैं शोक करणेके अयोग्य पदार्थों-विषे शोचत्वबुद्धिरूप भ्रम पशु पक्षी आदिक सर्व प्राणीमात्रविषे साधारण है । और तूं तौ अत्यंत पंडित होइकैभी तिस भ्रमकूं प्राप्त भया है । यातैं तुमारेकूं यह भ्रम होणा अत्यंत अनुचित है । और (कुतस्त्वा कश्मलमिदं) इत्यादिक मेरे वचनोंकरिकै तुमारेकूं यह हमनैं बहुत अनुचित करा है या प्रकारके विचारकी प्राप्ति होणी चाहीती थी और तूं आपभी बुद्धिमान् है । ऐसा बुद्धिमान हुआभी तूं बुद्धिमान् पुरुषोंकरिकै नहीं कहणे योग्य (कथं भीष्ममहं संख्ये) इत्यादिक वचनोंकूं कथन करता है । परंतु लज्जाकरिकै तूष्णीभावकूं तूं प्राप्त होता नहीं । इसतैं परे दूसरा क्या अनुचित व्यवहार होवै है । यातैं युद्धतैं निवृत्तिरूप अधर्मविषे जो धर्मत्वबुद्धिरूप भ्रांति है । तथा युद्धरूप धर्मविषे जो अधर्मत्वबुद्धिरूप भ्रांति है । सा असा-धारण भ्रांति तैं अत्यंत पंडितकूं उचित नहीं है । अथवा (प्रज्ञावादांश्च भाषसे) या वचनका यह अर्थ करणा । देहतैं भिन्न करिकै आत्माकूं जानणेहारे जो प्रज्ञावान् पुरुष हैं । तिन प्रज्ञावान् पुरुषोंके (नरके नियतं वासः पतंति पितरो ह्येषां) इत्यादिक वचनमात्रोंकूंही तूं कथन करता है । परंतु तिन प्रज्ञावान् पुरुषोंकी न्यांई तिन वचनोंके यथार्थ तात्पर्यकूं तूं जाणता नहीं । जो तूं शास्त्रके वचनोंका यथार्थ तात्पर्य जाणता । तौ तूं शोकमोहकूं प्राप्त नहीं होता । शंका । हे भगवन् वसिष्ठादिक जो महान् पुरुष हुए हैं । तिनोंनैंभी अपणे पुत्रादिक बांधवोंके मरणेकरिकै महान् शोक करा है । यातैं अपणे बांधवोंके मरणेविषे शोक करणा अनुचित नहीं है । किंतु शिष्टाचारकरिकै प्राप्त होणेतैं सो शोक करणा उचित है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए भगवान् कहे हैं । (गतासूनिति) हे अर्जुन विचारकरिकै उत्पन्न भया है आत्माके वास्तव स्वरूपका ज्ञान जिनोंकूं ऐसे जो पंडित हैं । ते पं-डित पुरुष प्राणोंतैं रहित बांधवोंके शरीरोंका तथा प्राणयुक्त बांधवोंके शरीरोंका शोक करते नहीं । तात्पर्य यह । मृत्युकूं प्राप्त हुए यह हमारे बांधव सर्व पदार्थोंका परित्याग करिकै जाते भये हैं । ते हमारे बांधव अबी क्या करते होवैंगे तथा किस स्थानविषे स्थित होवैंगे । और यह जीवते हुए ह-मारे बांधव तिन मरे हुए संबंधीयोंके वियोगकरिकै कैसे जीवैंगे । या प्रकारके व्यामोहकूं ते पंडित पुरुष प्राप्त होते नहीं। काहेतैं तिन ब्रह्मवेत्ता पंडित पुरुषोंकूं समाधिकालविषे तौ तिन बांधवोंकी प्रतीतिही नहीं होवै है । और समाधितैं उत्थानकालविषे यद्यपि तिन ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंकूं बांधवोंकी प्रतीति

होवै है । तथापि ते ब्रह्मवेत्ता पुरुष ता व्युत्थानकालविषे तिन बांधवोंकूं मिथ्यारूपकरिकै निश्चय करे हैं । और जैसे रज्जुरूप अधिष्ठानके साक्षात्कारकरिकै सर्पभ्रमके निवृत्त हुएतैं अनंतर ता सर्पभ्रमजन्य भयकंपादिक आपही निवृत्त होइ जावै हैं । और जैसे पित्तदोषयुक्त रसनइंद्रियवाले पुरुषकूं कदाचित् गुडविषे तिक्त रसकी प्रतीति हुएभी ता गुडविषे मधुररसके निश्चयकूं बलवान् होणेतैं तिक्त रसकी इच्छाकरिकै ता पुरुषकी गुडविषे प्रवृत्ति होवै नहीं । तैसे शोकके अविषय पदार्थोंविषे जो शोचत्वबुद्धिरूप भ्रम है । सो भ्रमभी अधिष्ठान आत्माके अज्ञानकरिकै करा हुआ है । जबी अधिष्ठान आत्माके साक्षात्कारकरिकै ता अज्ञानकी निवृत्ति होवै है । तबी ता अज्ञानका कार्यरूप शोचत्वभ्रम आपही निवृत्त होइ जावै है । और वसिष्ठादिक महान् पुरुषोंनैं प्रारब्धकर्मकी प्रबलतातैं जो शोकमोहादिक करे हैं । ते शोकमोहादिक शिष्टाचाररूपकरिकै ग्रहण करे जावैं नहीं । काहेतैं शिष्ट पुरुषोंनैं धर्मबुद्धिकरिकै अनुष्ठान करा जो अलौकिक व्यवहार है । सोईही शिष्टाचार कह्या जावै है । यह शिष्टाचारका लक्षण तिन वसिष्ठादिकोंके शोकमोहादिकोंविषे घटता नहीं । काहेतैं ते शोकमोहादिक पशुपक्षी आदिक सर्व प्राणीयोंविषे स्वभावतैंही प्राप्त हैं । यातैं तिनोंविषे अलौकिकरूपता संभवै नहीं और तिन वसिष्ठादिकोंनैं कोई धर्मबुद्धिकरिकै शोकमोहादिक करे नहीं । यातैं तिन शोकमोहादिकोंविषे शिष्टाचाररूपता संभवै नहीं । और या प्रकारके शिष्टाचारके लक्षणका परित्याग करिकै जो सामान्यतैं शिष्ट पुरुषोंके व्यवहारमात्रकूंही प्रमाण मानिये । तौ शिष्ट पुरुषोंकी जो मलमूत्रादिकोंका परित्यागरूप स्वाभाविक चेष्टा है । सा स्वाभाविक चेष्टाभी शिष्टाचाररूपकरिकै ग्रहण करी चाहिये । और ता स्वाभाविक चेष्टाकूं कोईभी बुद्धिमान् पुरुष शिष्टाचाररूपकरिकै ग्रहण करता नहीं । यातैं वसिष्ठादिकोंके शोकमोहकूं देखिकरिकै तुमारेकूं शोकमोह करणा योग्य नहीं है इति ॥ ११ ॥ ❀ अब (नत्वेवाहं) इत्यादिक ओगणीश १९ श्लोकोंकरिकै (अशोच्यानन्वशोचस्त्वं) इस वचनका अर्थ विस्तारतैं निरूपण करे हैं । और तिसतैं अनंतर (स्वधर्ममपि चावेक्ष्य) इत्यादिक अष्ट श्लोकोंकरिकै (प्रज्ञावादांश्च भाषसे) इस वचनका अर्थ विस्तारतैं निरूपण करैंगे । काहेतैं साधारण असाधारण यह पूर्व उक्त दो प्रकारका मोह भिन्न भिन्न प्रयत्नकरिकैही निवृत्त होवै है । एक प्रयत्नकरिकै निवृत्त होवै नहीं । तहां स्थूल शरीरतैं आत्माका भेद सिद्ध करणेवासतै प्रथम आत्माविषे नित्यत्व सिद्ध करे हैं ।

(मू. श्लो.) नत्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः । न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतःपरं ॥ १२ ॥ (पदच्छेदः)
न । तु । एव । अहं । जातु । न । आसं । न । त्वं । न । इमे । जनाधिपाः । न । च । एव न । भविष्यामः । सर्वे । वयं । अतः । परं ॥ १२ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन मैं कृष्णभगवान् इसतैं पूर्व कदाचित्भी नहीं होता भया हूं यह नहीं कह्या जावै है तथा तूं अर्जुन इसतैं पूर्व कदाचित्भी नहीं होता भया है यहभी नहीं कह्या जावै है तथा यह सर्व राजे इसतैं पूर्व कदाचित्भी नहीं होते भये हैं यहभी नहीं कह्या जावै है किंतु मैं तूं यह सर्व राजे पूर्व होतेही भये हैं तथा इसतैं आगे हम सर्व नहीं होवैंगे यहभी नहीं कह्या जावै है किंतु हम सर्व आगेभी होवैंगे ॥ १२ ॥

टीका। हे अर्जुन जैसे सर्व जगत्का कारण मैं कृष्णभगवान् इसतैं पूर्व कदाचित्भी नहीं होता भया हूं यह कह्या जावै नहीं। किंतु इसतैं पूर्वभी मैं होता भया हूं। तैसे तूं अर्जुन तथा यह भीष्मद्रोणादिक सर्व राजे इसतैं पूर्व कदाचित्भी नहीं होते भये हैं। यह कह्या जावै नहीं। किंतु तूं अर्जुन तथा यह भीष्मद्रोणादिक सर्व राजे इसतैं पूर्वभी होते भये हैं। इतनै कहणेकरिकै आत्माविषे प्रागभावका अप्रतियोगीपणा दिखाया। और मैं कृष्णभगवान् तथा तूं अर्जुन तथा यह भीष्मद्रोणादिक सर्व राजे इसतैं आगे कदाचित्भी नहीं होवैंगे यह कह्या जावै नहीं। किंतु इसतैं आगेभी हम सर्व होवैंगेही। इतनै कहणेकरिकै आत्माविषे प्रध्वंसाभावका अप्रतियोगीपणा दिखाया। या कहणेतैं यह अर्थ सिद्ध भया। भूतकालविषे तथा भविष्यत् कालविषे तथा वर्त्तमानकालविषे जो विद्यमान होवै है। ताकूं नित्य कहें हैं। यह नित्यका लक्षण आत्माविषेही घटे है। या स्थूल देहविषे घटता नहीं। यातैं यह आत्माही नित्य है। नित्य होणेतैं यह आत्मा स्थूल शरीरतैं विलक्षणही सिद्ध होवै है। इसी विलक्षणताकूं (नत्वेवाहं) या वचनविषे स्थित तु या शब्दकरिकै सूचन करा है इति ॥ १२ ॥ ❀ ॥ शंका। हे भगवन् चेतनता धर्मकरिकै विशिष्ट जो यह स्थूल देह है। सो स्थूल देहही आत्मा है या प्रकार चार्वाक नास्तिक माने हैं। या स्थूल देहकूं आत्मा माननेमैं तिनोंके मतविषे मैं स्थूल हूं मैं गौर हूं मैं चलता हूं इत्यादिक ज्ञानोंकी प्रामाण्यताभी बाधतैं रहित सिद्ध होवै है। या देहतैं जो आत्माकूं भिन्न मानिये। तौ यह सर्व ज्ञान अप्रमारूप होवैंगे। यातैं या स्थूल देहतैं आत्मा भिन्न नहीं है। किंतु स्थूलत्व गौरत्व आदिक धर्मोंवाला यह स्थूल देहही आत्मा है। किंवा या स्थूल शरीरतैं जो आत्माकूं भिन्नभी अंगीकार करिये। तौभी ता आत्माविषे जन्ममरणका अभाव संभवै नहीं। काहेतैं देवदत्त नामा पुरुष जन्मकूं प्राप्त भया है तथा देवदत्त नामा पुरुष मरणकूं प्राप्त भया है या प्रकारकी प्रतीति सर्व जनोंकूं होवै है। यातैं देहके जन्मसाथि आत्माकाभी जन्म संभवै है। तथा देहके मरणसाथि आत्माकाभी मरण संभवै है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहै हैं।

॥१०॥

(मू. श्लो.) देहिनोस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा । तथा देहांतरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ १३ ॥ (पदच्छेदः) देहिनः[2] । अस्मिन्[3] । यथा[1] । देहे[4] । कौमारं[5] । यौवनं[6] । जरा[7] । तथा[8] । देहांतरप्राप्तिः[9] । [11]धीरः । तत्र[10] । न[12] । मुह्यति[13] ॥१३॥ (पदार्थः) हे अर्जुन जैसे[1] देही[2] आत्माकूं इस[3] देह[4]विषे कौमार[5] यौवन[6] जरा[7] यह तीन अवस्था प्राप्त होवै हैं तैसे[8] दूसरे[9] देहकीभी प्राप्ति होवै है तिस[10]विषे धीर[11] पुरुष न[12]हीं मोह[13]कूं प्राप्त होवै हैं ॥ १३ ॥

टीका । भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान या तीन कालोंविषे स्थित जितनै की जगतमंडलवर्त्ति देह हैं । ते सर्व देह जिसके होवैं ताकूं देही कहे हैं । सो एकही देही आत्मा विभु होणेतैं सर्व देहोंके साथि संबंधवाला है । यातैं ता एक चेतन आत्माकरिकैही सर्व शरीरोंविषे नाना प्रकारकी चेष्टा सिद्ध होइ सकै हैं । देहदेहविषे आत्माके भेद मानणेमैं किंचित्मात्रभी प्रमाण नहीं है । या अर्थके सूचन करणेवासतैही (देहिनः) या पदविषे एकवचनका कथन करा है । और पूर्वश्लोकविषे जो (सर्वे वयं) यह बहुवचन कथन करा था । ता बहुवचनका शरीरोंके भेदविषे तात्पर्य है । कोई आत्माके भेदविषे ता बहुवचनका तात्पर्य नहीं है । यातैं पूर्वउत्तर वचनोंका विरोध होवै नहीं । ऐसे एक देही आत्माके जैसे इस वर्त्तमान स्थूलदेहविषे बाल्य अवस्था यौवन अवस्था वृद्ध अवस्था यह परस्पर विरुद्ध तीन अवस्था होवै हैं । तिन बाल्यादिक तीन अवस्थावोंके भेदकरिकै ता देही आत्माका भेद होवै नहीं । काहेतैं जो मैं पूर्व बाल्य अवस्थाविषे अपणे मातापिताकूं अनुभव करता भया हूं । सोईही मैं अबी वृद्ध अवस्थाविषे अपणे पुत्र-पौत्रादिकोंका अनुभव करता हूं । या प्रत्यभिज्ञाज्ञानके बलतैं बाल्य अवस्थाके आत्माका तथा वृद्ध अवस्थाके आत्माका अभेदही सिद्ध होवै है । और बाल्य अवस्थाके शरीरका तथा वृद्ध अवस्थाके शरीरका भेद तौ सर्वकूं प्रत्यक्षही प्रतीत होवै है । यातैं देहके भेदकरिकै आत्माका भेद होवै नहीं । इसी प्रकार जन्मादिक विकारोंतैं रहित आत्माकूं इस शरीरतैं अत्यंत विलक्षण शरीरकी प्राप्ति स्वप्नविषे तथा योगके प्रभावजन्य ऐश्वर्यविषे होवै है । तहां तिस तिस दोहोंके भेदकी प्रतीति हुएभी सोईही मैं हूं या प्रकारके प्रत्यभिज्ञाज्ञानके बलतैं आत्माकी एकताही सिद्ध होवै है । जो कदाचित् यह स्थूल देहही आत्मा होवै । तौ बाल्ययौवनादिक अवस्थावोंके भेदकरिकै देहके भेद सिद्ध हुए सोई मैं हूं या प्रकारका प्रत्यभिज्ञाज्ञान नहीं होणा चाहिये । काहेतैं अन्यविषे रहे हुए संस्कार अन्य पुरुषके प्रत्यभिज्ञाज्ञानके कारण होवैं नहीं । किंतु एक अधिकरणविषे वर्त्तमान हुए संस्कारोंका तथा प्रत्यभिज्ञाज्ञानका

परस्पर कारणकार्यभाव होवै है । किंवा । बाल्य, यौवन, वृद्ध या तीन अवस्थावोंके भेद हुएभी तिन अवस्थारूप धर्मोंका आश्रय जो देह है । सो देह बाल्य अवस्थातैं लैके वृद्ध अवस्थापर्यंत एकही रहे है । ता देहकी एकताकूंही सो प्रत्यभिज्ञाज्ञान विषय करे है। आत्माके एकताकूं सो प्रत्यभिज्ञाज्ञान विषय करै नहीं । या प्रकारका वचन जो सो चार्वाकादिक है । सो संभवै नहीं । काहेतैं स्वप्नविषे जाग्रतके देहतैं भिन्नही देह होवै है । और योगके प्रभावतैं योगी पुरुष अनेक देहोंकूं रचे है । तहां धर्मीरूप देहोंकाही भेद है । यातैं तहां सोईही मैं हूं या प्रकारका प्रत्यभिज्ञाज्ञान नहीं होणा चाहिये । और सोईही मैं हूं या प्रकारका प्रत्यभिज्ञाज्ञान तौ स्वप्नद्रष्टा पुरुषकूं तथा योगी पुरुषकूंभी होवै है । यातैं देहोंकी एकताकूं सो प्रत्यभिज्ञाज्ञान विषय करै नहीं । इसी अभिप्रायकरिकै बाल्यादिक अवस्था तथा स्वप्नद्रष्टा योगी पुरुषके देह यह दो प्रकारके दृष्टांत दिये हैं । यातैं जैसे मरुमरीचिकादिकोंविषे जलादिकोंकी बुद्धि भ्रांतिरूप होवै है । तैसे मैं स्थूल हूं मैं गौर हूं मैं चलता हूं इत्यादिक बुद्धियांभी भ्रांतिरूपही हैं । काहेतैं अधिष्ठान वस्तुके ज्ञानतैं तिन दोनों बुद्धियोंका बाध होइ जावै है । जिसका अधिष्ठानके ज्ञानकरिकै बाध होवै है । सो भ्रांतिही होवै है । यह वार्त्ता (न जायते) इत्यादिक वचनोंविषे आगे स्पष्ट होवैगी । इतनै कहणेकरिकै देहतैं भिन्न हुआभी आत्मा ता देहके उत्पन्न हुए ता देहके साथि उत्पन्न होवै है तथा देहके नाश हुए ता देहके साथि नाश होवै है यह वादीका पक्षभी खंडन हुआ जानणा । काहेतैं ता पक्षविषे यद्यपि बाल्य यौवनादिक अवस्थावोंके भेद हुएभी सोईही मैं हूं या प्रकारका प्रत्यभिज्ञाज्ञानधर्मीरूप देहकी एकताकूं लैके संभव होइ सकै है । तथापि जिसस्वप्नविषे तथा योगजन्य ऐश्वर्यविषे धर्मीरूप देहोंकाही भेद होवै है । तिस स्थलविषे सोईही मैं हूं प्रकारका प्रत्यभिज्ञाज्ञान ता वादीके मतविषे नहीं संभवैगा । और तहांभी सो प्रत्यभिज्ञाज्ञान तौ होवै है । यातैं देहके उत्पत्तिनाशके साथि आत्माका उत्पत्तिनाश मानणा अत्यंत विरुद्ध है । अथवा । (देहिनोस्मिन्) या श्लोकका यह दूसरा अर्थ करणा । जैसे जन्मादिक विकारोंतैं रहित एकही आत्माकूं कौमारादिक तीन अवस्थावोंकी प्राप्ति होवै है । तैसे इस देहतैं प्राणोंके उत्क्रमणतैं अनंतर दूसरे देहकी प्राप्ति होवै है । तहां जैसे बाल्यादिक अवस्थावोंकी प्राप्तिकालविषे सोईही मैं हूं या प्रकारका प्रत्यभिज्ञाज्ञान होवै है । तैसे मरणतैं अनंतर दूसरे देहके प्राप्त हुए सोईही मैं हूं या प्रकारका प्रत्यभिज्ञाज्ञान होवै नहीं । यातैं सोईही मैं हूं या प्रकारके प्रत्यभिज्ञाज्ञानकरिकै यद्यपि तहां पूर्वउत्तर देहोंविषे आत्माकी एकता सिद्ध होवै नहीं । तथापि युक्तिकरिकै तहां आत्माकी एकता सिद्ध होइ सकै है । सा युक्ति यह है । माताके उदरतैं बाहिर निकस्या हुआ जो बालक है तिस बालककूं इसी कालविषे हर्ष, शोक, भय आदिकोंकी प्राप्ति होवै है । तिन हर्षशोकादिकोंकी प्राप्तिविषे

दूसरा तौ कोई कारण संभवता नहीं। किंतु केवल पूर्वजन्मके संस्कारही तिन हर्षशोकादिकोंके कारण हैं। जो कदाचित् पूर्वजन्मके संस्कार नहीं अंगीकार करीयें। तौ माताके उदरतैं बाहिर निकस्या जो बालक है। ता बालककी उसी कालविषे माताके स्तन्यपानादिकोंविषे प्रवृत्ति होवै है। सा नहीं होणी चाहीये। काहेतैं चेतन प्राणीयोंकी जा जा प्रवृत्ति होवै है सा सा प्रवृत्ति यह वस्तु हमारे इष्टका साधन है या प्रकारके इष्टसाधनताज्ञानकरिकै जन्य होवै है। इष्टसाधनताज्ञानतैं विना कोईभी प्रवृत्ति होवै नहीं। यातैं बालककी जो माताके स्तन्यपानविषे प्रथम प्रवृत्ति है ता प्रवृत्तितैं पूर्व यह स्तन्यपान हमारे इष्टका साधन है या प्रकारका इष्टसाधनताज्ञान ता बालककूं अवश्य मान्या चाहीये। और ता जन्मकालविषे ता बालककूं सो इष्टसाधनताज्ञान अनुभवरूप तौ संभवता नहीं। किंतु सो इष्टसाधनताज्ञान स्मृतिरूप मानणा होवैगा। और जो जो स्मृतिरूप ज्ञान होवै है। सो सो पूर्व अनुभवजन्य संस्कारोंतैंही होवै है। संस्कारोंतैं विना स्मृतिज्ञान होवै नहीं। यातैं ता बालककूं पूर्वजन्मोंविषे यह माताका स्तन्यपान हमारे क्षुधाकी निवृत्तिरूप इष्टका साधन है या प्रकारका अनुभव बहुतवार हुआ है। ता अनुभवजन्य संस्कारोंतैंही ता बालककूं जन्मकालविषे सो स्मरणरूप इष्टसाधनताज्ञान होवै है। यह अंगीकार करणा होवैगा। और ते संस्कारभी अनुद्बुद्ध हुए स्मृतिज्ञानकूं उत्पन्न करै नहीं। किंतु उद्बुद्ध हुएही ते संस्कार स्मृतिज्ञानकूं उत्पन्न करे है। जो अनुद्बुद्ध संस्कारोंतैंभी वस्तुकी स्मृति होती होवै। तौ सर्व कालविषे ता वस्तुकी स्मृति होणी चाहीये। यातैं जन्मकालविषे ता बालकके पूर्वजन्मके संस्कारोंका उद्बोधन करणेहारा पुण्यपापरूप अदृष्टतैं विना दूसरा कोई संभवता नहीं। किंतु जिन पूर्वजन्मोंके पुण्यपापरूप अदृष्टोंनैं यह वर्त्तमान शरीर दिया है। ते पुण्यपापरूप अदृष्टही ता जन्मकालविषे पूर्वजन्मके संस्कारोंकूं उद्बुद्ध करे हैं। और ते पूर्वजन्मके संस्कार तथा पुण्यपापरूप अदृष्ट आत्मारूप आश्रयतैं विना स्वतंत्र रहैं नहीं। यातैं पूर्वजन्मविषे आत्माकी विद्यमानता अंगीकार करी चाहीये। या प्रकारकी युक्तिकरिकैही पूर्व उत्तर शरीरविषे आत्माकी एकता सिद्ध होवै है इति ॥ अथवा ॥ (देहिनोस्मिन्) या श्लोकका यह तीसरा अर्थ करणा। जैसे तैं एकही देह आत्माका क्रमतैं देहके बाल्यादिक अवस्थावोंकी उत्पत्ति विनाश हुएभी नित्य होणेतैं भेद नहीं होवै है। तैसे विभु होणेतैं एकही आत्माकूं एकही कालविषे सर्व देहोंकी प्राप्ति होवै है। तहां आत्माकूं जो देहादिकोंकी न्यांई मध्यम परिमाणवाला मानियें तौ आत्माविषे देहादिकोंकी न्यांई अनित्यता प्राप्त होवैगी। और आत्माकूं जो अणुपरिमाणवाला मानियें तौ सर्व शरीरविषे व्यापक सुखदुःखकी प्रतीति नहीं होणी चाहीये। तिन दोनों दोषोंकी निवृत्ति करणेवासतै आत्माकूं विभु मान्या चाहीये। और सर्व शरीरोंविषे ‘ अहंअस्मि अहंअस्मि ’ या प्रकारकी एकाकार प्रतीति देखणेविषे आवै

है । यातैं सर्व शरीरोंविषे तूं एकही आत्मा व्यापक है । इस प्रकार सर्व शरीरोंविषे आत्माकी एकताके सिद्ध हुएभी यह भीष्मद्रोणादिक वध्य हैं और मैं अर्जुन इनोंका घातक हूं या प्रकारकी भेद कल्पनाकूं करिकै जो तूं मोहकूं प्राप्त भया है । ताकेविषे तुमारा अविद्वानपणाही हेतु है । और जो विद्वान पुरुष सर्व शरीरोंविषे आत्माकी एकताकूं जानै हैं । ते विद्वान धीर पुरुष ताकेविषे मोहकूं प्राप्त होवै नहीं । काहेतैं मैं इनोंका हनन करणेहारा हूं और हमारेकरिकै यह हनन होवैंगे या प्रकारका भेददर्शन ता विद्वान पुरुषकूं होता नहीं । या कहणेकरिकै भगवान्नैं यह अनुमान सूचन करा । वादीयोंके विवादका विषयरूप जो यह भीष्मद्रोणादिक सर्व देह हैं । ते सर्व देह एक भोक्ता आत्मावाले हैं देहत्व धर्मवाले होणेतैं तुमारे बाल्ययौवनादिक देहोंकी न्यांई इति । तहां श्रुतिभी कहे हैं । "एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतांतरात्मा इति" अर्थ यह । एकही आत्मादेव सर्वभूतप्राणीयोंविषे व्यापक है । तथा काष्ठोंविषे अग्निकी न्यांई गुह्य है । तथा सर्व भूतप्राणीयोंका अंतरआत्मा है इति । इतनै कहणेकरिकै आत्माविषे नित्यपणा तथा विभुपणा सिद्ध करा । ताकरिकै इतनै मत खंडन करे । तहां चार्वाक नास्तिक तौ या स्थूल देहकूंही आत्मा माने हैं । और तिन चार्वाकोंके एकदेशीयोंविषे कोईक तौ इंद्रियोंकूंही आत्मा माने हैं । और कोईक मनकूंही आत्मा माने हैं । और कोईक प्राणोंकूंही आत्मा माने हैं । और सौगत तौ क्षणिक विज्ञानकूंही आत्मा माने हैं । और दिगंबर तौ देहतैं भिन्न तथा स्थिर स्वभाववाला तथा देहके समान परिमाणवाला आत्माकूं माने हैं । और मध्यम परिमाणवालेविषे नित्यता संभवै नहीं यातैं नित्य तथा अणुपरिमाणवाला आत्मा है या प्रकार दिगंबरोंके एकदेशी माने हैं । सिद्धांतमैं आत्माकूं नित्य तथा विभु मानणेविषे ते सर्व मत खंडन होइ जावै हैं इति ॥ १३ ॥ ❀ ॥ शंका ॥ हे भगवन् आत्मा नित्य है तथा विभु है या अर्थविषे तौ हम विवाद करते नहीं । परंतु सर्व देहोंविषे आत्मा एक है या अर्थकूं हम नहीं सहारि सकते हैं । काहेतैं बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार या नव गुणोंवाला नित्य विभु आत्मा होवै है । सो आत्मा शरीरशरीरविषे भिन्न भिन्न होवै है । या प्रकार वैशेषिक अंगीकार करे हैं । इसीही पक्षकूं दूसरे तार्किक, मीमांसक आदिकभी अंगीकार करे हैं । और आत्माकूं निर्गुण मानणेहारे सांख्यशास्त्रवाले तौ आत्मा सुखदुःखादिक गुणोंवाला है या अर्थविषे यद्यपि विवाद करे हैं । तथापि शरीरशरीरविषे आत्मा भिन्न भिन्न है या अर्थविषे ते सांख्यशास्त्रवालेभी विवाद करते नहीं । जो कदाचित् सर्व शरीरोंविषे एकही आत्मा अंगीकार करीयें तौ एक शरीरविषे सुखकी प्राप्ति हुए सर्व शरीरोंविषे सुखकी प्राप्ति होणी चाहीये । तथा एक शरीरविषे दुःखकी प्राप्ति हुए सर्व शरीरोंविषे दुःखकी प्राप्ति होणी चाहीये । और

एक शरीरविषे सुखदुःखकी प्राप्ति हुए सर्व शरीरोंविषे सुखदुःखकी प्राप्ति देखणेविषे आवती नहीं । यातैं शरीरशरीरविषे भिन्न भिन्न आत्मा मान्या चाहीये । इस प्रकार आत्माके भेद सिद्ध हुए भीष्मद्रोणादिकोंतैं भिन्न मैं आत्मा यद्यपि नित्य हूं तथा विभु हूं तथापि मैं आत्मा सुखदुःखादिक गुणोंवाला हूं । यातैं तिन भीष्मद्रोणादिक बांधवोंके देहके नाश हुए हमारेविषे सुखका वियोग तथा दुःखका संबंध अवश्यकरिकै होवैगा । यातैं हमारेकूं शोक मोह करणा अनुचित नहीं है । किंतु उचित है । इस प्रकारके अर्जुनके अभिप्रायकी शंकाकरिकै सो श्रीभगवान् लिंगदेहके विवेक करणेवासतै कहे हैं ।

(मू. श्लो.) मात्रास्पर्शास्तु कौंतेय शीतोष्णसुखदुःखदाः । आगमापायिनोनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥ १४ ॥ (पदच्छेदः) मात्रास्पर्शाः । तु । कौंतेय । शीतोष्णसुखदुःखदाः । आगमापायिनः । अनित्याः । तान् । तितिक्षस्व । भारत ॥ १४ ॥ (पदार्थः) हे कूंतीके पुत्र हे भरतवंशविषे उत्पन्न हुआ अर्जुन अनियतस्वभाववाले जो इंद्रियोंके विषयोंके साथि संबंध हैं ते उत्पत्तिनाशवान् अंतःकरणकूंही शीतउष्णकी प्राप्तिद्वारा सुखदुःखकी प्राप्ति करणेहारे हैं तिनोंकूं तूं सहन कर ॥ १४ ॥

टीका । जिनोंकरिकै विषय जाने जावै हैं तिनोंका नाम मात्रा है । ऐसे नेत्रादिक इंद्रिय हैं । नेत्रादिक इंद्रियोंकरिकैही रूपादिक विषय जाने जावै हैं । तिन नेत्रादिक इंद्रियोंके जो रूपादिक विषयोंके साथि यथायोग्य संबंध हैं । तिनोंका नाम मात्रास्पर्श है । अथवा । नेत्रादिक इंद्रियोंकरिकै जन्य जो तिस तिस विषयाकार अंतःकरणका परिणामरूप वृत्तियां हैं तिनोंका नाम मात्रास्पर्श है । अथवा । कौषीतकिउपनिषद्‌विषे वागादिक दश इंद्रियोंकूं प्रज्ञामात्रा कहा है । और नामादिक दश विषयोंकूं भूतमात्रा कहा है । तिन वागादिक दश इंद्रियोंका तथा नामादिक दश विषयोंका इहां मात्राशब्दकरिकै ग्रहण करणा । तिन इंद्रियविषयरूप मात्रावोंके जो परस्पर विषयविषयीभावसंबंध हैं । तिनोंका नाम मात्रास्पर्श है । अथवा । मात्रा यह तृतीयाविभक्त्यंत प्रमाताका वाचक भिन्न पद जानणा । ता प्रमाताके साथि जो विषय इंद्रियोंके संबंध हैं तिनोंका नाम मात्रास्पर्श है । और आगम नाम उत्पत्तिका है । और अपाय नाम नाशका है । सो आगम तथा अपाय जिसका होवै ताका नाम आगमापायी है । ऐसे आगमापायी अंतःकरणकूंही ते मात्रास्पर्श शीतउष्णादिकोंकी प्राप्तिद्वारा सुखदुःखकी प्राप्ति करे हैं । सर्वत्र व्यापक नित्य आत्माकूं ते मात्रास्पर्श सुखदुःखकी प्राप्ति करैं नहीं । काहेतैं सो नित्य आत्मा निर्गुण है तथा निर्विकार है । तहां श्रुति । " साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च " । अर्थ यह । यह आत्मादेव सर्वका साक्षी है

तथा चेतन है तथा अद्वितीय है तथा निर्गुण है तथा निष्क्रिय है इति। ऐसे निर्विकार नित्य आत्माकूं अनित्य अंतःकरणके सुखदुःखादिक धर्मोंकी आश्रयता संभवै नहीं। काहेतैं धर्म और धर्मी या दोनोंका अभेदही होवै है। अभेदतैं विना दूसरा कोई तिनोंका संबंध संभवता नहीं। सो नित्यअनित्यका अभेद कहणा अत्यंत विरुद्ध है यातैं ते सुखदुःखादिक आत्माके धर्म नहीं हैं। और सुखदुःखादिरूप साक्ष्य पदार्थोंविषे साक्षी आत्माका धर्मपणा कदाचित्भी संभवै नहीं। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। सुखदुःखादिक धर्मोंका आश्रय केवल अंतःकरणही है। आत्मा तिन सुखदुःखादिक धर्मोंका आश्रय नहीं है। सो अंतःकरण शरीरशरीरविषे भिन्न भिन्न है। ता अंतःकरणके भेदकूं अंगीकार करिकैही कोई सुखी है कोई दुःखी है इत्यादिक व्यवस्था संभव होइ सकै है। यातैं सुखदुःखादिकोंकी व्यवस्थाके अनुपपत्तितैं शरीरशरीरविषे आत्माका भेद मानणा अत्यंत असंगत है। किंवा सर्व जगत्का प्रकाश करणेहारा तथा जन्मादिक विकारोंतैं रहित जो आत्मा है। सो आत्मा सत्‌रूप करिकै तथा स्फुरणरूपकरिकै सर्व पदार्थोंविषे अनुगत हुआ प्रतीत होवै है। यातैं ता सत्तास्फुरणरूप आत्माके भेदविषे कोईभी प्रमाण नहीं है। उलटा " एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढः " इत्यादिक अनेक श्रुतियां आत्माके अभेदविषेही प्रमाण हैं। किंवा। सुखदुःखादिकोंकी उत्पत्तिविषे अंतःकरणकूं कारणता है। यह वार्त्ता नैयायिकोंकूं तथा सिद्धांतीकूं दोनोंकूं अंगीकार है। तहां नैयायिक तौ मनरूप अंतःकरणकूं सुखदुःखादिक धर्मोंका निमित्तकारण माने हैं। और आत्माकूं सुखदुःखादिकोंका समवायिकारण माने हैं। और सिद्धांतविषे अंतःकरणकूंही सुखदुःखादिकोंका उपादानकारण मान्या है। तहां " साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च " इत्यादिक श्रुतियोंनैं आत्माकूं निर्गुण कह्या है। यातैं निर्गुण आत्माविषे गुणकी समवायिकारणता कहणी श्रुतितैं विरुद्ध है। और अंतःकरणतैं विना दूसरे किसी पदार्थविषे सुखदुःखादिकोंकी समवायिकारणता संभवै नहीं। और निमित्तकारणताकी अपेक्षा करिकै समवायिकारणता श्रेष्ठभी होवै है। यातैं नैयायिकोंनैंभी अंतःकरणकूंही सुखदुःखादिकोंका समवायिकारण मान्या चाहीये। किंवा। केवल युक्तिकरिकैही अंतःकरणविषे सुखदुःखादिक धर्मोंकी उपादानकरणता सिद्ध नहीं है। किंतु श्रुतिप्रमाणकरिकैभी सिद्ध है। तहां श्रुति। " कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धा अश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एवेति "। अर्थ यह। इच्छा, संकल्प, संशय, श्रद्धा, अश्रद्धा, धैर्य, अधैर्य, लज्जा, वृत्तिज्ञान, भय यह सर्व मनरूपही हैं इति। यह श्रुति कामादिक विकारोंका मनके साथि अभेद कथन करती हुई मनकूं तिन कामादिक विकारोंका उपादानकारणत्व कथन करै है। ता श्रुतिविषे कामादिक विकार सुखदुःखादिक धर्मोंकेभी उपलक्षक हैं। और आत्माकूं तौ स्वप्रकाशज्ञान आनंदरूपताकरिकै अनेक श्रुतियोंनैं कथन करा

है । यातैं आत्माकूं तिन सुखदुःखादिक धर्मोंकी आश्रयता संभवै नहीं । यातैं नैयायिकादिकोनैं जो आत्माविषे विकारीपणा तथा भेद अंगीकार करा है । सो केवल भ्रांतिकरिकै अंगीकार करा है । हे अर्जुन आगमापायी होणेतैं तथा दृश्य होणेतैं नित्य द्रष्टा आत्मातैं भिन्न जो यह अंतःकरण है ता अंतःकरणविषे सुखदुःखकी उत्पत्ति करणेहारे जो मात्रास्पर्श हैं । ते मात्रास्पर्श नियतस्वभाववाले नहीं हैं । किंतु अनियतस्वभाववाले हैं । काहेतैं एक कालविषे सुखकूं उत्पन्न करणेहारे जो शीतउष्णादिक हैं । तेही शीतउष्णादिक अन्य कालविषे दुःखकूंही उत्पन्न करे हैं । इसी प्रकार किसी कालविषे दुःखकूं उत्पन्न करणेहारे जो शीतउष्णादिक हैं । तेही शीतउष्णादिक अन्यकालविषे सुखकूंही उत्पन्न करे हैं । यातैं ते मात्रास्पर्श अनियतस्वभाववाले हैं। इहां शीतउष्णका ग्रहण आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक या तीन प्रकारके सुखदुःखके ग्रहणकाभी उपलक्षक है तहां ज्वरादिक व्याधियोंकरिकै अंतःकरणविषे उत्पन्न भया जो दुःख है ताकूं आध्यात्मिक दुःख कहे हैं । और सिंहसर्पादिक भूतोंकरिकै उत्पन्न भया जो दुःख है ताकूं आधिभौतिक दुःख कहे हैं । और जल अग्नि ग्रहादिकोंकरिकै उत्पन्न भया जो दुःख है ताकूं आधिदैविक दुःख कहे हैं । इस प्रकार सुखकेभी तीन भेद जानि लेणे । यातैं हे अर्जुन अत्यंत अस्थिर स्वभाववाले तथा तैं निर्विकार आत्मातैं भिन्न विकारी अंतःकरणकूं सुखदुःखकी प्राप्ति करणेहारे ऐसे जो भीष्मद्रोणादिकोंके संयोगवियोगरूप मात्रास्पर्श हैं । तिन मात्रास्पर्शोंकूं तूं सहन कर। तात्पर्य यह । यह मात्रास्पर्श मैं अविकारी आत्माकी किंचित्मात्रभी हानि करते नहीं या प्रकारके विवेककरिकै तूं तिन मात्रास्पर्शोंकी उपेक्षा कर । दुःखादिक धर्मवाले अंतःकरणके तादात्म्य अध्यास करिकै तूं अपणे आत्माकूं दुःखी मत मान । यहही तिन मात्रास्पर्शोंका सहन है । इहां (हे कौंतेय हे भारत) या दोनों संबोधनोंकरिकै श्रीभगवान्‌नैं अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन करा। मातृकुल तथा पितृकुल या दोनों कुलोंकरिकै अत्यंत शुद्ध जो तूं अर्जुन है तिस तुमारेकूं या प्रकारका अज्ञान उचित नहीं है इति। और किसी टीकाविषे (आगमापायिनः) यह विशेषण मात्रास्पर्शोंकाही कथन करा है। आगमापायी होणेतैं ते मात्रास्पर्श अनित्य हैं या प्रकार ताका अर्थ करा है । परंतु इस व्याख्यानविषे (शीतोष्णसुखदुःखदाः) या वचनकरिकै कथन करी जो सुखदुःखकी प्राप्ति सा सुखदुःखकी प्राप्ति ते मात्रास्पर्श किसकूं करे हैं या प्रकारकी जिज्ञासाके हुए अंतःकरणकूं सुखदुःखकी प्राप्ति करे हैं या प्रकारके अर्थतैं अंतःकरणका ग्रहण होवै है। और पूर्व व्याख्यानविषे (आगमापायिनः) यह शब्द अंतःकरणकाही वाचक है। यातैं ता शब्दतैंही अंतःकरणकी प्राप्ति है इति ॥ १४ ॥ ❀ ॥ शंका हे भगवन् अंतःकरणकूं जो सुखदुःखका आश्रय अंगीकार करौगें । तौ तिस अंतःकरणकूंही कर्त्ताभोक्तापणेकी प्राप्तिकरिकै चेतनरूपता अंगीकार क-

रणी होवैगी । ता अंतःकरणकूंही जबी चेतनरूपता सिद्ध हुई तबी ता अंतःकरणतैं भिन्न तथा ता अंतःकरणकूं प्रकाश करणेहारे भोक्ता आत्माविषे कोई प्रमाण है नहीं । यातैं केवल नाममात्रविषे विवाद सिद्ध होवैगा । तिन नामोंके अर्थविषे कोई विवाद होवैगा नहीं । किसी वादीनैं तिसकूं अंतःकरण नामकरिकै कथन करा । किसी वादीनैं तिसकूं आत्मा नामकरिकै कथन करा । और ता अंतःकरणतैं भिन्न जो चेतन आत्मा अंगीकार करौगे । तौ वेदांतसिद्धांतविषे अंगीकार करी जो बंधमोक्ष दोनोंकी समानाधिकरणता है सा सिद्ध नहीं होवैगी । किंतु ता बंधमोक्षका भिन्न भिन्न अधिकरण सिद्ध होवैगा । तहां सुखदुःखका आश्रय होणेतैं अंतःकरण तौ बंधका अधिकरण होवैगा । और ता अंतःकरण तैं भिन्न आत्मा मोक्षका अधिकरण होवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके निवृत्त करणेवासतै श्रीभगवान् कहे हैं ।

(मू.श्लो.) यं हि न व्यथयंत्येते पुरुषं पुरुषर्षभ । समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ १५ ॥ (पदच्छेदः) ॥ यं । हि । न । व्यथयंति । एते । पुरुषं पुरुषर्षभ । समदुःखसुखं । धीरं । सः । अमृतत्वाय । कल्पते ॥ १५ ॥ (पदार्थः) हे पुरुषोंविषे श्रेष्ठ अर्जुन समान हैं दुःखसुख जिसकूं ऐसे जिसैं धीरैं पुरुषकूं यह मात्रास्पर्श जिसैं काणरतैं नहीं व्यथा करते तिस कारणतैं सो धीर पुरुष मोक्षकी प्राप्तिवासतै योग्य होवैहे ॥ १५ ॥

टीका । हे अर्जुन "अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिर्भवति"। अर्थ यह। स्वप्न अवस्थाविषे सूर्यादिक ज्योतियोंके अभाव हुए यह आत्मा पुरुषही स्वयंज्योति है इति। या श्रुतिप्रमाणतैं स्वप्रकाशरूपकरिकै सिद्ध जो चेतन आत्मा है । सो चेतन आत्मा अपणे परिपूर्ण रूपकरिकै सर्व शरीररूप पुरियोंविषे निवास करे है । या कारणतैं श्रुतिभगवती ता चेतन आत्माकूं पुरुष या नामकरिकै कथन करे है । अथवा । अष्ट पुरोंविषे जो निवास करे है ताका नाम पुरुष है । ते अष्ट पुर यह हैं । श्लोक । "कर्मेंद्रियाणि खलु पंच तथा पराणि ज्ञानेंद्रियाणि मन आदि चतुष्टयं च ॥ प्राणादि पंचकमथो वियदादिकं च कामश्च कर्म च तमः पुनरष्टमी पूरिति" । अर्थ यह । वाकादिक पंच कर्मइंद्रिय १ तथा श्रोत्रादिक पंच ज्ञानइंद्रिय २ तथा मनआदिक अंतःकरणचारि ३ तथा प्राणादिक पंचप्राण ४ तथा आकाशादिक पंच भूत ५ तथा काम ६ तथा कर्म ७ तथा तम ८ या अष्टोंका नाम पुर है । इहां तम शब्दकरिकै कारणअज्ञान ग्रहण करणा इति । तहां श्रुति । "स वायं पुरुषः सर्वासु पूर्षु परिवाशयः" । अर्थ यह । यह चेतन आत्मा शरीरादिरूप सर्व पुरियोंविषे नि-

वास करता हुआ पुरुषसंज्ञाकूं प्राप्त होवै है इति । ऐसे स्वयंज्योति आत्माकूं अनात्म अंतःकरणके धर्मरूपकरिकै तथा दृश्यरूपकरिकै यह दुःखसुख समान नहीं हैं । या कारणतैं ता आत्माकूं समदुःखसुख कहे हैं । इहां दुखःसुखका ग्रहण पूर्व उक्त अंतःकरणके कामसंकल्पादिक सर्व धर्मोंका उपलक्षक है । तहां श्रुति । "एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य न वर्धते कर्मणा नो कनीयान्" । अर्थ यह । ब्रह्मरूप ब्राह्मणका यह नित्य महिमा है । जो पुण्यकर्मकरिकै सुखरूप वृद्धिकूं नहीं प्राप्त होवै है । और पापकर्मकरिकै दुःखरूप कनिष्ठताकूं नहीं प्राप्त होवै है इति । या श्रुतिनैं आत्माविषे सुख-दुःख दोनों धर्मोंका निषेध करा है । ताकरिकै कामसंकल्पादिक सर्व धर्मोंका निषेधभी जानि लेणा । और सो स्वयंज्योति आत्मा अपणे चिदाभास-द्वारा बुद्धिके साथि तादात्म्य अध्यासकूं प्राप्त होइकै ता बुद्धिकूं शुभ अशुभ कार्यविषे प्रेरणा करे है । यातैं ता बुद्धिके प्रेरक साक्षी आत्माकूं धीर या नामकरिकै कथन करे हैं । "धियमीरयतीति धीरः इति" । तहां श्रुति । "सधीः स्वप्नो भूत्वेमं लोकमतिक्रामति" । अर्थ यह । बुद्धिरूप उपाधिवाला यह आत्मादेव स्वप्नकूं प्राप्त होइकै इस जाग्रत्का परित्याग करै है इति । इतनै कहणेकरिकै आत्माविषे बंधकी प्रसक्ति दिखाई । जिस अधिकरणविषे जो वस्तु स्वभावतैं होवै नहीं तिस अधिकरणविषे तिस वस्तुका आरोप करणा याका नाम प्रसक्ति है । यह वार्त्ता दूसरे शास्त्रविषेभी कथन करी है । तहां श्लोक । "यतो मानानि सिध्यंति जाग्रदादित्रयं तथा । भावाभावविभागश्च स ब्रह्मास्मीति बोध्यते" । अर्थ यह । जिस स्वयंज्योति आत्मातैं प्रत्यक्षादिक सर्व प्रमाण सिद्ध होवै हैं । तथा जाग्रदादिक तीन अवस्था सिद्ध होवै हैं । तथा यह भावपदार्थ है यह अभाव है इत्यादिक भेद सिद्ध होवै है । सो साक्षी आत्माही "ब्रह्मास्मि" इत्यादिक महावाक्योंनैं बोधन करीता है इति । ऐसे सम दुःखसुख धीरपुरुषकूं पूर्व उक्त सुखदुःखके देणेहारे मात्रास्पर्श जिस कारणतैं वास्तवतैं व्यथाकी प्राप्ति करते नहीं । काहेतैं सो स्वयंज्योति पुरुष सर्व विकारोंका प्रकाशक होणेतैं तिन विकारोंके योग्य नहीं है । तहां श्रुति । "सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः । एकस्तथा सर्वभूतांतरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्य इति" । अर्थ यह । जैसे सर्व लोकोंका चक्षु जो सूर्यभगवान् है । सो सूर्यभगवान् चक्षुके विषय बाह्य दोषोंकरिकै लिपायमान होवै नहीं । तैसे एक अद्वितीयरूप सर्व भूतोंका अंतरआत्मा बाह्य लोक दुःखोंकरिकै लिपायमान होवै नहीं इति । इस कारणतैं सो धीर पुरुष अपणे स्वरूपभूत ब्रह्मात्माके एकताज्ञानकरिकै सर्व दुःखोंके उपादानकारणरूप अज्ञानकी निवृत्तिपूर्वक अद्वितीय स्वप्रकाश परमानंदरूप मोक्षकी प्राप्तिवासतै योग्य होवै है । जो कदाचित् यह स्वयंज्योति आत्मा आरोपित बंधका आश्रय नहीं होवै । किंतु स्वाभाविक बंधका आश्रय होवै । तौ धर्मीकी निवृत्तितैं विना स्वाभाविक धर्मोंकी निवृत्ति

होवै नहीं। जैसे अग्निरूप धर्मीकी निवृत्तितैं विना ताके उष्णादिक स्वाभाविक धर्मोंकी निवृत्ति होवै नहीं। तैसे आत्मारूप धर्मीकी निवृत्तितैं विना ता स्वाभाविक बंधरूप धर्मकी कदाचित्भी निवृत्ति नहीं होवैगी। और आत्मा तौ नित्य है। यातैं ता आत्माकी कदाचित्भी निवृत्ति संभवै नहीं। यातैं आत्मा कदाचित्भी मुक्त नहीं होवैगा। यह वार्त्ता अन्य शास्त्रविषेभी कथन करी है। तहां श्लोक ॥ "आत्मा कर्त्रादिरूपश्चेन्मा कांक्षीस्तर्हि मुक्ततां। नहि स्वभावो भावानां व्यावर्तेतौष्ण्यवद्रवेः"। अर्थ यह। आत्मा जो कदाचित् स्वभावतैंही कर्तृत्वभोक्तृत्वादिरूप बंधवाला होवै तौ हे शिष्य तूं मुक्तपणेकी इच्छा मत कर। काहेतैं भावपदार्थोंका जो स्वाभाविक धर्म होवै है। सो धर्म ता भावपदार्थरूप धर्मीकी निवृत्तितैं विना कदाचित्भी निवृत्त होवै नहीं। जैसे सूर्यका स्वाभाविक धर्म जो उष्णता है। सो उष्णतारूप धर्म सूर्यरूप धर्मीकी निवृत्तितैं विना निवृत्त होवै नहीं इति। किंवा। आत्माविषे स्वाभाविक बंधके अंगीकार किये किसीकूंभी मोक्षकी प्राप्ति नहीं होवैगी। सो यह वार्त्ता "विमुक्तश्च विमुच्यते ज्ञानादेव तु कैवल्यं" इत्यादिक ज्ञानतैं मोक्षकी प्राप्तिकूं कथन करणेहारी अनेक श्रुतियोंतैंभी विरुद्ध है। शंका। आत्माविषे जो कदाचित् स्वाभाविक बंध हम अंगीकार करैं। तौ यह पूर्व उक्त दोष हमारेकूं प्राप्त होवै। परंतु ता आत्माविषे सो बंध हम स्वाभाविक अंगीकार करते नहीं। किंतु ता आत्माविषे बुद्धि आदिक उपाधिकृत बंध है। तहां श्रुति। "आत्मेंद्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः"। अर्थ यह। इंद्रियमनरूप उपाधिकरिकै युक्त आत्मा भोक्ता होवै है या प्रकार बुद्धिमान् पुरुष कथन करे हैं इति। इस प्रकार आत्माविषे उपाधिकृत बंधके अंगीकार किये हुए आत्मारूप धर्मीके विद्यमान हुएभी ता औपाधिक बंधकी निवृत्तिकरिकै मुक्तिकी प्राप्ति होई सकै है। समाधान। हे वादी या तुमारे कहणेकरिकै यह अर्थ सिद्ध होवै है। जो वस्तु अपणे धर्मोंकूं अन्य वस्तुविषे स्थितरूप करिकै प्रतीत करावै है ता वस्तुका नाम उपाधि है। जैसे रक्त वर्णवाला जपाकुसुम अपणे रक्त वर्णकूं समीपवर्त्ति स्फटिकमणिविषे स्थितरूपकरिकै प्रतीत करावै है। यातैं ता जपाकुसुमकूं उपाधि कहे हैं। तैसे यह बुद्धि आदिकभी अपणे सुखदुःखादिक धर्मोंकूं आत्माविषे स्थितरूप करिकै प्रतीत करावै हैं। यातैं यह बुद्धि आदिकभी उपाधि हैं। और जो धर्म उपाधिकृत होवै है। सो धर्म असत्यही होवै है। जैसे जपाकुसुमरूप उपाधिकृत जो स्फटिमणिविषे रक्तता है सा रक्तता असत्यही है। तैसे बुद्धि आदिक उपाधिकृत जो आत्माविषे कर्तृत्वभोक्तृत्वादिक बंध है सो बंधभी असत्यही होवैगा। इस प्रकार बंधविषे औपाधिकता मानिकरिकै असत्यरूपताकूं अंगीकार करणेहारा तूं वादी हमारे सिद्धांतरूप मार्गविषेही प्राप्त भया है। यातैं तूं हमारे अनुकूल हैं प्रतिकूल नहीं। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। वास्तवतैं कर्तृत्वभोक्तृत्वादिक सर्व संसारधर्मोंके संबंधतैं रहित आत्मा-

विषेभी अंतःकरणादिक उपाधिके वशतैं जो तिन संसारधर्मोंके संबंधकी प्रतीति है यहही आत्माविषे बंध है। और अपणे वास्तव स्वरूपके ज्ञानकरिकै जबी अपणे स्वरूपके अज्ञानकी निवृत्ति होवै है तथा ता अज्ञानके कार्यरूप बुद्धि आदिक उपाधियोंकी निवृत्ति होवै है तथा ता उपाधिकृत सर्व भ्रमकी निवृत्ति होवै है। तबी सर्व दृश्यप्रपंचके संबंधतैं रहित होणेतैं शुद्धरूप तथा स्वप्रकाश परमानंदरूपताकरिकै सर्वत्र परिपूर्णरूप जो आत्मा है ता आत्मादेवका स्वतःही कैवल्यरूप मोक्ष होवै है। यातैं बंध मोक्ष या दोनोंका भिन्न भिन्न अधिकरण नहीं है। किंतु एकही आत्मा दोनोंका अधिकरण है। या कहणेतैं अंतःकरण आत्मा या प्रकारके नाममात्रविषेही विवाद है। तिन दोनों नामोंका अर्थ एकही है। यह जो पूर्ववादीनैं कहा था सोभी खंडन हुआ जानणा। काहेतैं प्रकाश्य और प्रकाशक या दोनोंकी एकता संभवै नहीं। जैसे प्रकाश्य जो घटादिक पदार्थ हैं तथा प्रकाशक जो दीपकादिक हैं तिन दोनोंकी एकता संभवै नहीं। तैसे प्रकाश्यरूप जो अंतःकरणादिक हैं तथा प्रकाशक जो साक्षी आत्मा है तिन दोनोंकीभी एकता संभवै नहीं। किंतु प्रकाश्य पदार्थ प्रकाशकतैं भिन्नही होवै है। जो कदाचित् एकही पदार्थकूं प्रकाश्यरूप तथा प्रकाशकरूप मानियें। तौ एकही पदार्थविषे प्रकाशरूप क्रियाका कर्त्तापणा तथा कर्मपणा प्राप्त होवैगा। सो अत्यंत विरुद्ध है। एकही वस्तुविषे एक क्रियानिरूपित कर्त्तापणा तथा कर्मपणा कहांभी देखणेविषे आवता नहीं। शंका। एकही वस्तुविषे जो प्रकाश्यता तथा प्रकाशकता नहीं होवै तौ आत्माविषेभी सा प्रकाश्यता तथा प्रकाशकता कैसे संभवैगी। समाधान। स्वयंज्योति आत्माविषे हम केवल प्रकाशकताही अंगीकार करते हैं। घटादिक पदार्थोंकी न्यांई आत्माविषे प्रकाश्यता हम अंगीकार करते नहीं। और आत्माविषे जो अंतःकरणादिकोंका प्रकाशकपणा ह सो स्वप्रकाशज्ञानरूपतातैं भिन्न नहीं है। किंतु सो प्रकाशकपणा स्वप्रकाश ज्ञानरूपताही है। ऐसा प्रकाशकपणा आत्मातैं भिन्न अंतःकरणादिकोंविषे संभवता नहीं। शंका। बुद्धिकी वृत्तियोंतैं भिन्न दूसरा कोई ज्ञान है नहीं। यातैं बुद्धिकी वृत्तियांही ज्ञानरूप हैं। समाधान। ज्ञान सर्व देशविषे तथा सर्व कालविषे अनुगत है तथा भेद करणेहारे धर्मोंतैं रहित है। यातैं सो ज्ञान विभु है तथा नित्य है तथा एक है। और बुद्धिका परिणामरूप वृत्तियां तौ परिच्छिन्न हैं तथा अनित्य हैं तथा अनेक हैं। ऐसे विभु नित्य एक ज्ञानकूं परिच्छिन्न अनित्य अनेक वृत्तिरूपता संभवै नहीं। शंका। ज्ञानकूं जो नित्य तथा एक अंगीकार करौगे। तौ हमारेविषे पूर्वला घटज्ञान नाश हुआ है और अबी पटज्ञान उत्पन्न भया है या प्रकारकी प्रतीति ज्ञानके उत्पत्तिनाशकूं तथा भेदकूं विषय करणेहारी असंगत होवैगी। समाधान। सा प्रतीति ज्ञानके उत्पत्तिनाशकूं विषय करती नहीं। किंतु ता साक्षीआत्मारूप ज्ञानका जो

 घटादिक विषयोंके साथि वृत्तिद्वारा संबंध है ता संबंधके उत्पत्तिनाशादिकोंकूं सा प्रतीति विषय करे है । जो ऐसा नहीं अंगीकार करियें तौ तिस
तिस ज्ञानकी उत्पत्ति तथा नाश तथा भेद आदिकोंकी कल्पना करणेविषे अत्यंत गौरवदोषकी प्राप्ति होवैगी। यातैं सो साक्षी आत्मारूप ज्ञान नित्य है तथा
 विभु है तथा एक अद्वितीयरूप है । तहां श्रुति । “नहि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात् आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः महद्भूतमनंतमपारं वि-
ज्ञानघन एव तदेव ब्रह्म पूर्वमनपरमनंतरमबाह्यमयमात्मा ब्रह्मसर्वानुभूरिति” । अर्थ यह । द्रष्टा आत्माका स्वरूपभूत जो ज्ञानरूप दृष्टि सा दृष्टि
नाशतैं रहित है यातैं ता दृष्टिका किसीभी अवस्थाविषे अभाव होवै नहीं । और यह ज्ञानस्वरूप आत्मा आकाशकी न्यांई सर्वत्र व्यापक है तथा नित्य
है । और यह ज्ञानस्वरूप आत्मा महान्‌रूप है । तथा अनंत है तथा अपार है तथा विज्ञानघन है । और यह ज्ञानस्वरूप ब्रह्म कारणतैं रहित है
तथा कार्यतैं रहित तथा अंतरपणेतैं रहित है तथा बाह्यपणेतैं रहित है यह ज्ञानस्वरूप आत्मा ब्रह्मरूप है इति । इत्यादिक अनेक श्रुतियां आत्माकूं
विभु नित्य स्वप्रकाश ज्ञानरूपकरिकै कथन करे हैं । इतनै कहणेकरिकै अविद्यारूप कारणउपाधितैंभी आत्माका भेद सिद्ध हुआ । यातैं यह अर्थ सिद्ध
भया । स्थूलसूक्ष्मकारणरूप असत्य उपाधियोंकरिकै करा हुआ जो आत्माविषे बंधभ्रम है। ता बंधभ्रमकी जबी आत्माके ज्ञानकरिकै निवृत्ति होवै है ।
तबी या स्वयंज्योति पुरुषकूं मोक्षकी प्राप्ति होवै है । या हमारे सिद्धांतविषे पूर्व उक्त किंचित्‌मात्रभी दोषकी प्राप्ति होवै नहीं । इहां (हे पुरुषर्षभ)
या संबोधनकरिकै भगवान्‌नैं अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन करा । स्वप्रकाशचैतन्यरूपताकरिकै जो तुमारेविषे पुरुषपणा है तथा परमानंदरूपताकरिकै
जो तुमारेविषे सर्व द्वैतप्रपंचकी अपेक्षाकरिकै श्रेष्ठतारूप ऋषभपणा है । ता अपणे पुरुषपणेकूं तथा ऋषभपणेकूं नहीं जानता हुआही तूं शोककूं प्राप्त
हुआ है । यातैं ता शोकके निवृत्तिका कोई दूसरा उपाय है नहीं । किंतु ता अपणे स्वरूपके ज्ञानतैंही तुमारे शोककी निवृत्ति होवैगी । तहां श्रुति ।
“तरति शोकमात्मवित्” । अर्थ यह । आत्मवेत्ता पुरुष शोकतैं रहित होवै है इति । या श्लोकविषे (पुरुषं) इस एकवचनकरिकै सांख्यशास्त्रके म-
तका खंडन करा । काहेतैं ते सांख्यशास्त्रवाले अनेक पुरुषोंकूं अंगीकार करे हैं इति ॥ १५ ॥ ❀ ॥ शंका । हे भगवन् यद्यपि चेतन आत्मा
पुरुष एकहीं है । तथापि ता पुरुषविषे सत्यरूप जड पदार्थोंका जो द्रष्टापणारूप संसार है । सो संसार असत्य नहीं है । किंतु सो संसार सत्य है ।
ता संसारके सत्य हुए शीतउष्णादिक सुखदुःखके कारणोंके विद्यमान हुए ता सुखदुःखका भोगभी अवश्यकरिकै होवैगा । और सत्य वस्तुकी ज्ञानतैं
निवृत्ति होवै नहीं । जो सत्य वस्तुकीभी ज्ञानतैं निवृत्ति होवै तौ सत्य आत्माकीभी ज्ञानतैं निवृत्ति होणी चाहिये । यातैं पूर्व कथन करी हुई मात्रा-

स्पर्शोंकी तितिक्षा कैसे संभवैगी । तथा यह पुरुष मोक्षकी प्राप्तिवासतै कैसे योग्य होवैगा । समाधान । हे अर्जुन जैसे शुक्तिविषे कल्पित जो रजत है ता रजतकी शुक्तिरूप अधिष्ठानके ज्ञानतैं निवृत्ति होवै है । तैसे या सर्व द्वैतप्रपंचकूं आत्माविषे कल्पित होणेतैं ता अधिष्ठान आत्माके ज्ञानकरिकै ता कल्पित प्रपंचकी निवृत्ति बनि सकै है । शंका । हे भगवन् जैसे आत्माकी प्रतीति होवै है । तैसे अनात्म प्रपंचकीभी प्रतीति होवै है । यातैं आत्मा अनात्मा दोनोंकी तुल्यप्रतीतिके हुए आत्माकी न्यांई अनात्मजगत्‌भी सत्य किस वासतै नहीं होवै । तथा अनात्मजगत्‌की न्यांई आत्माभी असत्य किस वासतै नहीं होवै । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीकृष्णभगवान् तिन दोनोंविषे विशेषता वर्णन करे हैं ।

(मू. श्लो.) नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः । उभयोरपि दृष्टोंतस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १६ ॥ (पदच्छेदः) न । असतः । विद्यते । भावः । न । अभावः । विद्यते । सतः । उभयोः । अपि । दृष्टः । अंतः । तु । अनयोः । तत्त्वदर्शिभिः ॥ १६ ॥ (पदार्थः) हे अर्जुन असत्‌वस्तुकी सत्ता नहीं संभवै है तथा सत्‌वस्तुका अभाव नहीं संभवै है इन सत असत् दोनोंकी भी मर्यादा तत्त्वदर्शि पुरुषोंनें देखी है ॥ १६ ॥

टीका । कालकृत परिच्छेद देशकृत परिच्छेद वस्तुकृत परिच्छेद या तीन प्रकारके परिच्छेदोंवाला जो पदार्थ होवै है । सो पदार्थ असत् कह्या जावै है । ऐसे घटादिक अनात्म पदार्थ हैं । तहां प्रागभावका तथा प्रध्वंसाभावका जो प्रतियोगीपणा है ताका नाम कालपरिच्छेद है । जैसे घटकी उत्पत्तितैं पूर्व ता घटका मृत्तिकाविषे प्रागभाव रहे है ता प्रागभावका प्रतियोगीपणा ता घटविषे है । और ता घटके नाशतैं अनंतर ता घटका प्रध्वंसाभाव ता घटके कपालोंविषे रहे है और ता प्रध्वंसाभावका प्रतियोगीपणा ता घटविषे है । यातैं सो घट कालकृत परिच्छेदवाला है । घटके नाश हुएतैं अनंतर जो ठीकरे रहे हैं तिनोंका नाम कपाल है । और अत्यंताभावका जो प्रतियोगीपणा है ताका नाम देशपरिच्छेद है । जैसे जिस देशविषे घट रहे है ता देशकूं छोडिकै अन्य सर्व देशविषे ता घटका अत्यंताभाव रहे है । ता अत्यंताभावका प्रतियोगीपणा ता घटविषे रहे है । यातैं सो घट देशकृत परिच्छेदवाला है । तहां वेदांतसिद्धांतविषे यद्यपि जो पदार्थ कालकृत परिच्छेदवाला होवै है सो पदार्थ नियमकरिकै देशकृत परिच्छेदवालाभी होवै है । यातैं कालकृत परिच्छेदके ग्रहण करणेकरिकैही देशकृत परिच्छेदकाभी ग्रहण होइ सकै है । ता देशकृत परिच्छेदका भिन्न ग्रहण करणा संभवै नहीं । तथापि नैयायिक पृथिवी,

जल, तेज, वायु या चारोंके परमाणुवोंकूं तथा मनकूं मूर्त्तद्रव्य माने हैं तथा नित्य माने हैं । यातैं ते नैयायिक तिन परमाणुवोंविषे तथा मनविषे केवल देशकृत परिच्छेदही अंगीकार करै हैं। कालकृत परिच्छेद अंगीकार करै नहीं। या कारणतैं इहां कालकृत परिच्छेदतैं देशकृत परिच्छेद भिन्न ग्रहण करा है। और सजातीय भेद विजातीय भेद स्वगत भेद या तीन प्रकारके भेदोंका नाम वस्तुकृत परिच्छेद है। जैसे एक वृक्षका दूसरे वृक्षतैं जो भेद हैं ता भेदकूं सजातीयभेद कहे हैं। और तिसी वृक्षका पाषाणादिकोंतैं जो भेद है ता भेदकूं विजातीयभेद कहे हैं। और तिसी वृक्षका अपणे पत्रपुष्पफलादिकोंतैं जो भेद है ता भेदकूं स्वगतभेद कहे हैं। अथवा जीवईश्वरका भेद १ जीवजगत्का भेद २ जीवोंका परस्पर भेद ३ ईश्वरजगत्का भेद ४ जगत्का परस्पर भेद ५ या पंच प्रकारके भेदका नाम वस्तुपरिच्छेद है। यद्यपि वेदांतसिद्धांतविषे जो पदार्थ कालकृत परिच्छेदवाला तथा देशकृत परिच्छेदवाला होवै है। सो पदार्थ नियमकरिकै वस्तुपरिच्छेदवालाभी होवै है। यातैं कालकृत देशकृत परिच्छेदके ग्रहण कियेतैं वस्तुकृत परिच्छेदकाभी ग्रहण होइ सकै है। ता वस्तुकृत परिच्छेदका भिन्न ग्रहण करणा उचित नहीं है। तथापि नैयायिकोंके मतविषे आकाश काल दिशा यह तीनों नित्य हैं तथा विभु हैं। यातैं तिन आकाशादिकोंविषे ते नैयायिक कालकृत परिच्छेद तथा देशकृत परिच्छेद मानते नहीं। परंतु तिन आकाशादिकोंविषे ते नैयायिक वस्तुकृतपरिच्छेद तौ अंगीकार करे हैं । या कारणतैं कालकृत परिच्छेद देशकृत परिच्छेद या दोनों परिच्छेदोंतैं वस्तुकृत परिच्छेदकूं भिन्न ग्रहण करा है। इस प्रकारके तीन परिच्छेदोंवाला होणेतैं असत्‌रूप जो शीतउष्णादिक सर्व प्रपंच है। ता असत् प्रपंचका सत्तारूप भाव संभवै नहीं। इहां सत्ताशब्दकरिकै तीन परिच्छेदोंतैं रहिततारूप पारमार्थिकपणेका ग्रहण करणा। जैसे घटत्व और घटत्वका अभाव यह दोनों धर्म परस्पर विरोधि होणेतैं एक अधिकरणविषे कदाचित्‌भी रहते नहीं । तैसे परिच्छिन्नत्वरूप असत्व तथा अपरिच्छिन्नत्वरूप सत्त्व यह दोनों धर्मभी परस्पर विरोधी होणेतैं एक अधिकरणविषे कदाचित्‌भी रहैं नहीं । तात्पर्य यह । अनात्मरूप जितना की दृश्य प्रपंच है । सो दृश्य प्रपंच सर्वत्र अनुगत है नहीं । यातैं किसी कालविषे तथा किसी देशविषे तथा किसी वस्तुविषे ता दृश्य प्रपंचका अनिषेध होवै नहीं । किंतु ता दृश्य प्रपंचका सर्व देशकालवस्तुविषे निषेधही होवै है । जैसे घटका अपणी उत्पत्तितैं पूर्वकालविषे तथा नाशतैं उत्तरकालविषे तथा अपणे अधिकरणकूं छोडिकै अन्य सर्व देशविषे तथा पटादिक वस्तुवोंविषे 'घटो नास्ति' या प्रकारका निषेधही होवै है । और जो सत् वस्तु है सो सर्वत्र अनुगत है । यातैं ता सत् वस्तुका किसी कालविषे तथा किसी देशविषे तथा किसी वस्तुविषे कदाचित्‌भी निषेध होवै नहीं । यातैं जैसे एकही रज्जुविषे प्रतीत भये जो सर्प, दंड, जलधारा, माला आदिक हैं। तिन कल्पित सर्पादिकोंविषे सा रज्जु तौ 'अयं सर्पः, अयं दंडः' या

प्रकार इदंरूपकरिकै अनुगत हुई प्रतीत होवै है । यातैं सा रज्जु तिन कल्पित सर्पदंडादिकोंविषे अनुगत है। और ता सर्पकी प्रतीतिविषे दंडकी प्रतीति होवै नहीं । और ता दंडकी प्रतीतिविषे सर्पकी प्रतीति होवै नहीं । यातैं ते कल्पित सर्पदंडादिक परस्पर व्यभिचारी होणेतैं अनुगत नहीं हैं । या कारणतैंही ते अननुगत सर्पदंडादिक ता अनुगत रज्जुविषे कल्पित हैं । तैसे 'सन् घटः, सन् पटः' या प्रकार सर्व पदार्थोंविषे सत् वस्तु तौ अनुगत होइकै प्रतीत होवै है । यातैं सो सत् वस्तु सर्वत्र अनुगत है । और घट पट नहीं है तथा पट घट नहीं है। या प्रकार घटपटादिक पदार्थ परस्पर व्यभिचारी होणेतैं अननुगत हैं । या कारणतैं यह अननुगत घटपटादिक प्रपंच ता अनुगत सत् वस्तुविषे कल्पित है । शंका । हे भगवन् अनुगत-पणेतैं रहित व्यभिचारी वस्तुकूं जो कल्पित मानौंगे । तौ सत् वस्तुभी कल्पित होवैगा । काहेतैं सो सत् वस्तुभी शशशृंग वंध्यापुत्रादिक तुच्छ पदा-र्थोंतैं व्यावृत्त होणेतैं व्यभिचारीही है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं । (नाभावो विद्यते सतः इति) हे अर्जुन सत् अधिकरणविषे रहणेहारा जो भेद है ता भेदके प्रतियोगीपणेका नामही वस्तुपरिच्छेद है । जैसे घटरूप सत् वस्तुविषे रहणेहारा जो पटका भेद है ता भेदका प्रतियो-गीपणा ता पटविषे है। यहही ता पटविषे वस्तुपरिच्छेद है । और शशशृंग वंध्यापुत्रादिक असत् पदार्थोंविषे सत्रूपता है नहीं । यातैं तिन शशशृंगादिक असत् पदार्थोंतैं सत् वस्तुका भेद अंगीकार किये हुएभी ता सत् वस्तुविषे वस्तुपरिच्छेदकी प्राप्ति होवै नहीं । और स्वप्रकाश नित्यविभुरूप एकही सत् वस्तु सर्वत्र व्यापक है । यातैं ता सत् वस्तुविषे किसीभी सत् व्यक्तिका भेद संभवै नहीं । काहेतैं 'घटः सन्, पटः सन्' इत्यादिक प्रतीति सर्व लोकोंकूं होवै है । यातैं सत् वस्तुविषे घटादिक पदार्थोंविषे रहणेहारे भेदका प्रतियोगीपणा संभवता नहीं । ऐसे देशकालवस्तुपरिच्छेदतैं रहित सत् वस्तुका देशकालवस्तुकृत परिच्छिन्नत्वरूप अभाव संभवै नहीं । काहेतैं जैसे घटत्व और घटत्वका अभाव यह दोनों धर्म परस्पर विरोधी होणेतैं एक अधिकरणविषे रहते नहीं । तैसे परिच्छिन्नत्व अपरिच्छिन्नत्व यह दोनों धर्मभी परस्पर विरोधी होणेतैं एक अधिकरणविषे रहैं नहीं । शंका । जिसविषे देशकालवस्तुपरिच्छेदका निषेध करते हो। ऐसी कोई सत् वस्तु है नहीं। किंतु सत्ता नामा एक परा जाति है। सा सत्ताजाति द्रव्य, गुण, कर्म या तीन पदार्थोंविषे तौ समवायसंबंधकरिकै रहे है । और तिन द्रव्यादिकोंविषे रहणेहारे जो सामान्य, विशेष, समवाय यह तीन पदार्थ हैं तिनोंविषे सा सत्ताजाति सामानाधिकरण्यसंबंधकरिकै रहे है । या कारण-तैंही तिन द्रव्यादिक षट् पदार्थोंविषे 'द्रव्यं सन्, गुणः सन्' इत्यादिक सत् व्यवहार होवै है । यातैं उत्पत्तितैं पूर्ववर्त्तमानप्रागभावके प्रतियोगी होणेतैं अ-सत्रूप जो घटादिक हैं तिन असत् घटादिकोंकाही कुलाल दंड चक्रादिक कारणोंके व्यापारतैं सत्त्व होवै है । और तिन सत्रूप घटादिकोंकाही

मृत्तिकादिक कारणोंके नाशतैं अभावभी होवै है । यातैं असत् पदार्थका भाव नहीं होवै है और सत् वस्तुका अभाव नहीं होवै है या प्रकारका आपका वचन संभवता नहीं । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं (उभयोरपीति) हे अर्जुन सत् वस्तुका तथा असत् वस्तुका जो अंत है । क्या जो सत् वस्तु होवै है सो सर्व कालविषे सत्ही होवै है कदाचित्भी असत् होवै नहीं और जो असत् वस्तु होवै है सो सर्व कालविषे असत्ही होवै है कदाचित्भी सत् होवै नहीं । या प्रकारकी नियमरूप जो मर्यादा है । सो मर्यादारूप अंत वस्तुके यथार्थ स्वरूपकूं जानणेहारे ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंनैंही विचारपूर्वक श्रुतिस्मृतियुक्तियोंकरिकै निश्चय करा है । कुतार्किक नैयायिकादिकोंनैं सो मर्यादारूप अंत निश्चय करा नहीं । इहां श्रुतिस्मृतिप्रमाणतैं विरुद्ध तर्कका नाम कुतर्क है । तिन कुतर्कोंकूं कथन करणेहारे वादीयोंकूं कुतार्किक कहे हैं । ऐसे कुतार्किक पुरुषोंविषे सो पूर्व उक्त विपरीतभ्रम संभव होइ सकै है । इहां श्लोकविषे (अंतस्तु) या वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है । ता तुशब्दका निश्चयरूप अवधारण अर्थ है । तिस तुशब्दका (अंतः) या पदके साथि जो अन्वय करियें । तौ यह अर्थ सिद्ध होवै है । सत् वस्तु सत्ही होवै है और असत् वस्तु असत्ही होवै है या प्रकार ता सत् असत्का नियमही तत्त्वदर्शी पुरुषोंनैं देख्या है । ता सत् असत् वस्तुका अनियम देख्या नहीं इति । और तिस तुशब्दका (तत्त्वदर्शिभिः) या पदके साथि जो अन्वय करियें । तौ यह अर्थ सिद्ध होवै है । तत्त्वदर्शि पुरुषोंनैंही ता सत् असत् वस्तुका नियम देख्या है । अतत्त्वदर्शि पुरुषोंनैं सो नियम देख्या नहीं इति । तहां श्रुति । “ सदेवसौम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयमिति ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति ” । अर्थ यह । हे प्रियदर्शन यह दृश्यमान प्रपंच अपणी उत्पत्तितैं पूर्व सत् वस्तुरूपही होता भया है । सो सत् वस्तु एक अद्वितीयरूपही होता भया इति । या प्रकार छांदोग्यउपनिषदके षष्ठे अध्यायके आदिविषे कथन करिकै ताके अंतविषे यह कह्या है । यह सर्व जगत् आत्मास्वरूपही है सो आत्माहीसत्यरूप है । हे श्वेतकेतु सो सत् वस्तु आत्मा तूं हैं इति । यह श्रुति सजातीय, विजातीय, स्वगत भेदतैं रहित एक अद्वितीय वस्तुकूंही कथन करे है । और “ वाचरंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यं ” । अर्थ यह । घटशरावादिक विकार केवल वाणीमात्र होणेतैं मिथ्या हैं । तिन घटशरावादिक विकारोंका कारणरूप मृत्तिकाही सत्य है इति । यह श्रुति । परस्पर व्यभिचारीरूप घटशरावादिक विकारोंविषे मिथ्यापणेकूंही कथन करे है । तथा “ अन्नेन सौम्यशुंगेनापो मूलमन्विच्छ अद्भिः सौम्यशुंगेन तेजोमूलमन्विच्छ तेजसा सौम्यशुंगेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सौम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठा इति ” । अर्थ यह । हे प्रियदर्शन श्वेतकेतु या पृथिवीरूप कार्यकरिकै तूं जलरूप कारणकूं निश्चय कर । तथा

जलरूप कार्यकरिकै तूं तेजरूप कारणकूं निश्चय कर । तथा ता तेजरूप कार्यकरिकै तूं सत्वस्तुरूप कारणकूं निश्चय कर । हे श्वेतकेतु यह सर्व प्रजा ता सत्वस्तुतैंही उत्पन्न होवै है । तथा ता सत् वस्तुविषेही स्थित होवै है तथा ता सत् वस्तुविषेही लयकूं प्राप्त होवै है इति । यह श्रुति ता सत् वस्तुविषेही पृथिवी आदिक सर्व विकारोंका कल्पितपणा कथन करे है । " सदेव सौम्येदमग्रआसीत् " इत्यादिक सर्व श्रुतियोंका अर्थ आत्मपुराणके द्वादशे अध्यायविषे हम विस्तारतैं कथन करि आये हैं । किंवा । ' द्रव्यं सन्, गुणः सन् ' इत्यादिक प्रतीतियोंका विषय जो सत्ता है सा सत्ता पराजातिरूप है या प्रकारका वचन जो नैयायिकोंनैं कथन करा है । सो तिनोंका कहणा अत्यंत असंगत है । काहेतैं सन् सन् यह सत्ताकूं विषय करणेहारी प्रतीति द्रव्यादिक सर्व पदार्थमात्रविषे समान होवै है । केवल द्रव्य, गुण, कर्म या तीन पदार्थोंविषे सा प्रतीति होवै नहीं । यातैं सन् सन् या प्रकारकी प्रतीतिकरिकै द्रव्य गुणकर्ममात्रविषे रहणेहारी सत्ताजातिकी कल्पना होइ सकै नहीं । और एकरूप प्रतीति एकरूप विषयकरिकैही सिद्ध होवै है । ता एकरूप प्रतीतिविषे संबंधका भेद तथा स्वरूपका भेद कल्पना करणा अनुचित है । जैसे अनेक घटोंविषे ' अयं घटः, अयं घटः ' या प्रकारकी जो एकरूप प्रतीति है सा एकरूप प्रतीति घटत्वरूप एकरूप विषय करिकैही सिद्ध होइ सकै है । यातैं घटव्यक्तियोंविषे ता घटत्वधर्मके संबंधका भेद कल्पना करणा अनुचित है । तैसे सन् सन् यह एकरूपप्रतीति द्रव्य, गुण, कर्म या तीन पदार्थोंविषे तौ समवायसंबंधविशिष्ट सत्ताकूं विषय करे है और सामान्य, विशेष, समवाय या तीन पदार्थोंविषे सामानाधिकरण्यसंबंधविशिष्ट सत्ताकूं विषय करे है या प्रकार संबंधका भेद कल्पना करणा उचित नहीं है । और विषयकी एकरूपताके अभाव हुएभी जो कदाचित् प्रतीतिकी एकरूपता अंगीकार करौगे । तौ तुमारे मतविषे किसीभी जातिकी सिद्धि नहीं होवैगी । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । नैयायिकोंनैं अंगीकार करी जो सत्ताजाति है । सा सत्ताजाति ' घटः सन्, पटः सन् ' इत्यादिक सत् व्यवहारोंका साधक नहीं है । किंतु ज्ञात अज्ञात अवस्थाकूं प्रकाश करणेहारा तथा स्वतः स्फुरणरूप एकहीं सत् वस्तु अपणे तादात्म्य अध्यासकरिकै सर्व पदार्थोंविषे सन् सन् या प्रकारके सत् व्यवहारका साधक होवै है । किंवा । ' सन् घटः, सन् पटः ' इत्यादिक प्रतीतियां घटपटादिक व्यक्तियोंविषे सत्ताव्यक्तिके अभेदमात्रकूं विषय करे हैं । तिन घटपटादिक व्यक्तियोंविषे सत्ताजातिके समवायिपणेकूं ते प्रतीतियां विषय करै नहीं । काहेतैं अभेदकूं विषय करणेहारी जो प्रतीति है ता प्रतीतिका भेद घटित समवायसंबंधकरिकै निर्वाह होइ सकै नहीं । इस प्रकार ' द्रव्यं सन्, गुणः सन् ' इत्यादिक प्रतीतियोंकरिकै ता एक सत् वस्तुका द्रव्यादिक सर्व पदार्थोंके साथि अभेद सिद्ध हुए ता एक सत् वस्तुके साथि अभिन्न होणेतैं तिन द्रव्यगु-

णादिक पदार्थोंका परस्परभी भेद सिद्ध होवै नहीं । तिन द्रव्यादिकोंके भेदके असिद्ध हुए तिन द्रव्यगुणादिक धर्मीयोंविषे सत्ताजातिरूप धर्मभी कल्पना करा जावै नहीं । यातैं सत् वस्तुरूप धर्मीविषे द्रव्यगुणादिक पदार्थोंका अभेदही अंगीकार करणेयोग्य है । सो जड चेतनका अभेद वास्तवतैं तौ संभवै नहीं। किंतु आध्यासिकअभेदही संभवै है । किंवा । नैयायिकोंनैं विभुरूप कालपदार्थका सर्व पदार्थोंके साथि संबंध अंगीकार करा है । ता कालके संबंधकूं ग्रहण करिकैही, 'घटः सन्, पटः सन्' इत्यादिक सर्व व्यवहार संभव होइ सकै है । ता कालसंबंधतैं भिन्न सत्ताजातिरूप पदार्थके मानणेविषे कोई प्रमाण है नहीं। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । जैसे किसी देशविषे तथा किसी कालविषे अघटरूप जो पटादिक पदार्थ हैं । तिन पटादिक पदार्थोंकूं अन्य देशविषे तथा अन्य कालविषे घटरूपता होवै नहीं । और जैसे किसी देशविषे तथा किसी कालविषे घटरूपकरिकै स्थित जो घट है । ता घटकी अन्य देशविषे तथा अन्य कालविषे अघटरूपता साक्षात् इंद्रकरिकैभी सिद्ध होइ सकै नहीं। तैसे किसी देशविषे तथा किसी कालविषे असत्‌रूपकरिकै विद्यमान जो पदार्थ है ता असत् पदार्थका अन्य देशविषे तथा अन्य कालविषे सत्त्व सिद्ध होइ सकै नहीं। तैसे किसी देशविषे तथा किसी कालविषे सत्‌रूपकरिकै विद्यमान जो पदार्थ है ता सत् पदार्थका अन्य देशविषे तथा अन्य कालविषे असत्त्व सिद्ध होइ सकै नहीं। यातैं सत, असत् दोनोंका नियतरूपही अंगीकार करणेकूं योग्य है । यातैं एकही सत् वस्तु मायाकल्पित असतकी निवृत्ति करिकै मोक्षरूप अमृतकी प्राप्तिके योग्य होवै है । तथा सत् वस्तुमात्रकी दृष्टिकरिकै पूर्व उक्त तितिक्षाभी संभव होइ सकै है इति ॥ १६ ॥ ❀ ॥ शंका । हे भगवन् पूर्व कथन करा जो देशकालवस्तुपरिच्छेदतैं रहित सत् वस्तु है सो सत वस्तु ज्ञानरूप स्फुरणतैं भिन्न है अथवा अभिन्न है । तहां प्रथम भेदपक्ष तौ संभवै नहीं । काहेतैं ता सत् वस्तुकूं जो ज्ञानरूप स्फुरणतैं भिन्न अंगीकार करौगे । तौ सो सत् वस्तु भेदरूप वस्तुपरिच्छेदवाला होवैगा । ता परिच्छिन्नताकी प्राप्तिरूप दोषकी निवृत्ति वासतै सो सत् वस्तु ज्ञानरूप स्फुरणतैं अभिन्न है यह दूसरा पक्ष अंगीकार करणा होवैगा ।और जैसे 'अयं सर्पः' या प्रतीतिकरिकै रज्जुविषे जो सर्पका अभेद प्रतीत होवै है सो अभेद वास्तवतैं है नहीं किंतु सो अभेद आध्यासिक है। तैसे ता सत् वस्तुविषे ज्ञानरूप स्फुरणका जो आध्यासिक अभेद अंगीकार करौगे तौ ता ज्ञानरूप स्फुरणतैं वास्तवतैं भिन्न हुआ सो सत् वस्तु घटादिक पदार्थोंकी न्यांई जड होवैगा । यातैं ता जडता दोषकी निवृत्ति वासतै ता सत् वस्तुविषे ज्ञानरूप स्फुरणका वास्तव अभेद अंगीकार करणा होवैगा । ता वास्तव अभेदके अंगीकार किये हुएभी ता सत् वस्तुविषे पुनः देशकालवस्तुपरिच्छेदकी प्राप्ति होवैगी । काहेतैं हमारेविषे पूर्वला घटका ज्ञान नाश हुआ है अबी पटका ज्ञान उत्पन्न भया है । या प्रकारकी प्रतीति सर्व लोकोंकूं होवै है । ता प्र-

तीतितैं ज्ञानरूप स्फुरणका उत्पत्ति तथा नाश सिद्ध होवै है । और 'अहं । घटं जानामि' अर्थ यह मैं घटकूं जानता हूं या प्रकारकी प्रतीतिभी सर्व लोकोंकूं होवै है । या प्रतीतितैं अहंशब्दके अर्थविषे ता ज्ञानरूप स्फुरणकी आश्रयता सिद्ध होवै है । और घटविषे ता ज्ञानरूप स्फुरणकी विषयता सिद्ध होवै है । यातैं सो ज्ञानरूप स्फुरण देशकालवस्तुपरिच्छेदवालाही सिद्ध होवै है । ऐसे परिच्छिन्न ज्ञानरूप स्फुरणतैं जबी ता सत् वस्तुका वास्तवतैं अभेद हुआ । तबी ता सत् वस्तुविषेभी सो देशकालवस्तुपरिच्छेद प्राप्त होवैगा यातैं सो सत् वस्तु देशकालवस्तुपरिच्छेदतैं रहित है यह आपका वचन संभवता नहीं । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं ।

(मू. श्लो.) अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततं । विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥ १७ ॥ (पदच्छेदः) अविनाशि । तु । ततं । विद्धि । येन । सर्वं । इदं । ततं । विनाशं । अव्ययस्य अस्य । न । कश्चित् । कर्तुं । अर्हति ॥ १७ ॥ (पदार्थः) हे अर्जुन जिस सत्रूप स्फुरणनैं यह सर्व दृश्यप्रपंच व्याप्त करा है । तिस सत्रूप स्फुरणकूं तूं परिच्छेदरूप विनाशतैं रहित ही जान जिस कारणतैं इस अपरिच्छिन्न सत्रूप स्फुरणका परिच्छिन्नतारूप विनाशकूं कोईभी करणेकूं नहीं समर्थ है ॥ १७ ॥

टीका । देशकृत परिच्छेद, कालकृत परिच्छेद, वस्तुकृत परिच्छेद या तीन प्रकारके परिच्छेदोंका नाम विनाश है । सो विनाश जिसकूं प्राप्त होवै है ताका नाम विनाशि है ऐसे परिच्छिन्न पदार्थ हैं । तिन विनाशि पदार्थोंतैं जो विलक्षण होवै ताका नाम अविनाशि है क्या तीन प्रकारके परिच्छेदतैं रहित वस्तुका नाम अविनाशि है । हे अर्जुन ता सत् वस्तुरूप स्फुरणकूं तूं इस प्रकारका अविनाशि जान । कैसा है सो सत् वस्तुरूप स्फुरण । जिस एक अद्वितीय नित्य विभुरूप स्फुरणनैं स्वतः सत्तास्फूर्त्तितैं रहित यह सर्व दृश्य प्रपंच व्याप्त करा है । जैसे रज्जुरूप अधिष्ठाननैं अपणे इदमअंशकरिकै कल्पित सर्प, दंड, जलधारादिक व्याप्त करिते हैं । तैसे जिस सत् वस्तुरूप स्फुरणनैं अपणी सत्तास्फूर्तिके अध्यासकरिकै यह सर्व दृश्यप्रपंच व्याप्त करा है । ऐसे सत् वस्तुरूप स्फुरणकूं तूं परिच्छिन्नतारूप विनाशतैं रहितही जान । काहेतैं परिच्छेदरूप नाशतैं रहित तथा सर्वदा अपरोक्षरूप ऐसा जो सर्वत्र व्यापक सत्रूप स्फुरण है ता सत् वस्तुरूप स्फुरणके परिच्छिन्नतारूप विनाशकूं कोई आश्रय अथवा कोई विषय अथवा कोई इंद्रिय अर्थका संबंधरूप हेतु करणेविषे समर्थ होवै नहीं । काहेतैं कल्पित वस्तु अकल्पित वस्तुके परिच्छेदकूं करि सकै नहीं । जैसे रज्जुविषे कल्पित सर्प दंडादिक अकल्पित रज्जुके

परिच्छेदकूं करि सकै नहीं तैसे सत् वस्तुरूप स्फुरणविषे कल्पित जो विषय इंद्रियादिक हैं ते विषय इंद्रियादिक ता अकल्पित स्फुरणके परिच्छेदकूं करि सकै नहीं और जो वादी ता सत् वस्तुरूप स्फुरणविषे परिच्छिन्नपणेका आरोप अंगीकार करै सो औपाधिक परिच्छिन्नपणा हमारेकूंभी अंगीकार है। परंतु ता स्फुरणविषे वास्तवतैं परिच्छिन्नपणा है नहीं। किंवा। 'अहं घटं जानामि'। अर्थ यह। मैं घटकूं जानता हूं या ज्ञानविषे अहंकार तौ आश्रयरूपकरिकै प्रतीत होवै है। और घट विषयरूपकरिकै प्रतीत होवै है। और उत्पत्तिनाशवाली कोई अंतःकरणकी वृत्ति तौ सर्वत्र व्यापक सत्‌रूप स्फुरणके अभिव्यंजकतारूपकरिकै प्रतीत होवै है। ता अभिव्यंजकवृत्तिरूप उपाधिके उत्पत्तिनाशकरिकैही ता वृत्ति उपहित सत्‌रूप स्फुरणविषे उत्पत्ति नाश प्रतीत होवै है। वास्तवतैं ता सत्‌रूप स्फुरणका उत्पत्तिनाश होवै नहीं। अथवा। आत्मा मनका संयोग ज्ञानका कारण होवै है यह नैयायिकोंनैंभी अंगीकार करा है। ता संयोगरूप उपाधिके उत्पत्तिनाशकरिकैही ता संयोगउपहित सत्‌रूप स्फुरणविषे सो उत्पत्तिनाश प्रतीत होवै है। वास्तवतैं ता स्फुरणका उत्पत्तिनाश होवै नहीं। जैसे मीमांसकोंके मतविषे स्वभावतैं उत्पत्तिनाशतैं रहित जो वर्णात्मक शब्द है। ता शब्दविषे ध्वनिरूप उपाधिके उत्पत्तिनाशका आरोप होवै है। और जैसे नैयायिकोंके मतविषे वास्तवतैं उत्पत्तिनाशतैं रहित जो आकाश है ता आकाशविषे घटरूप उपाधिके उत्पत्तिनाशका आरोप होवै है। तैसे वेदांतसिद्धांतविषेभी वास्तवतैं उत्पत्तिनाशतैं रहित जो ज्ञानरूप स्फुरण है ता स्फुरणविषे अंतःकरणकी वृत्तिरूप उपाधिके उत्पत्तिनाशका आरोप होवै है। अथवा आत्मामनका संयोगरूप उपाधिके उत्पत्तिनाशका ता स्फुरणविषे आरोप होवै है। वास्तवतैं ता सत्‌वस्तुरूप स्फुरणका उत्पत्ति नाश होवै नहीं। और यद्यपि ता सत्‌वस्तुरूप स्फुरणविषे यह अहंकार कल्पित है। यातैं ता कल्पित अहंकारविषे ता स्फुरणकी आश्रयता संभवै नहीं। तथापि ता अहंकारकी वृत्तिके साथि ता स्फुरणका तादात्म्य अध्यास है। या कारणतैं ता वृत्तिके आश्रयरूप अहंकारके आश्रित हुआ सो स्फुरण प्रतीत होवै है। वास्तवतैं सो अहंकार ता स्फुरणका आश्रय नहीं है। काहेतैं सुषुप्ति अवस्थाविषे ता अहंकारके अभाव हुएभी ता अहंकारके सूक्ष्म वासनायुक्त अज्ञानकूं प्रकाश करणेहारा चैतन्य स्वतःही स्फुरण होवै है। जो कदाचित् सुषुप्ति अवस्थाविषे सो चैतन्य स्वतः स्फुरणरूप नहीं होवै। तौ इतनै कालपर्यंत मैं किंचित्‌मात्रभी नहीं जानता भया या प्रकारका अज्ञानविषयक स्मरण जो सुषुप्तितैं उठे हुए पुरुषकूं होवै है सो नहीं होणा चाहिये। और या प्रकारका स्मरण तौ सर्व पुरुषोंकूं होवै है। यातैं यह जान्या जावै है। सुषुप्ति अवस्थाविषे अज्ञानकूं प्रकाश करणेहारा चैतन्य स्वतः स्फुरणरूप है ता स्फुरणरूप अनुभवकरिकैही जाग्रत अवस्थाविषे सो अज्ञानविषयक स्मरण होवै है। किंवा। केवल जाग्रत् अवस्थाके स्मरणकी अनुपपत्तितैंही सुषुप्ति अवस्थाविषे

चैतन्यरूप स्फुरणकी सिद्धि नहीं होवै है। किंतु साक्षात् श्रुतिप्रमाणकरिकैभी ता ज्ञानरूप स्फुरणकी सिद्धि होवै है। तहां श्रुति। "यद्वैतन्न पश्यति पश्यन्वैतद्द्रष्टव्यं न पश्यति नहि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात्"। अर्थ यह। सुषुप्ति अवस्थाविषे यह आत्मादेव द्वैतप्रपंचकूं जो नहीं देखता है सो अपणे चैतन्यरूप स्फुरणके अभाव हुएतैं नहीं देखता है यह वार्त्ता कही जावै नहीं। किंतु ता सुषुप्ति अवस्थाविषे यह आत्मादेव अपणे चैतन्यरूप स्फुरणकरिकै देखता हुआभी तहां द्वैतप्रपंचका अभाव होणेतैं ता द्वैतप्रपंचकूं देखता नहीं। काहेतैं ता द्रष्टा आत्माका स्वरूपभूत जो स्फुरणरूप दृष्टि है सा दृष्टि नाशतैं रहित है यातैं ता स्फुरणरूप दृष्टिका किसीभी अवस्थाविषे अभाव होवै नहीं इति। यह श्रुति सुषुप्तिअवस्थाविषे स्वप्रकाशरूप स्फुरणके सद्भावकूं तथा नित्यताकूं कथन करे है। किंवा। जैसे अहंकारादिक ता ज्ञानरूप स्फुरणविषे कल्पित हे। तैसे घटादिक विषयोंके अज्ञात अवस्थाकूं प्रकाश करणेहारा जो सत् वस्तुरूप स्फुरण है ता स्फुरणविषे ते घटादिक विषयभी कल्पित हैं। काहेतैं जो घट हमनैं पूर्व नहीं जान्या था सोईही घट अबी हमनैं जान्या है। या प्रकारके अनुभवकरिकैही सा घटकी अज्ञात अवस्था सिद्ध होवै है। और जो ज्ञान अज्ञात वस्तुका प्रकाश करे है सो ज्ञानही प्रमाज्ञान होवै है। या प्रकार अज्ञात अर्थका ज्ञापकत्वरूप प्रमाज्ञानका लक्षण सर्व शास्त्रवाले अंगीकार करे हैं। या कारणतैंही नैयायिकोंनैं 'यथार्थानुभवः प्रमा' या प्रमाके लक्षणविषे पूर्वज्ञात अर्थकूं विषय करणेहारी स्मृतिके निवारण करणेवासतै अनुभव यह पद कथन करा है। तहां घटादिक विषयोंविषे जो अज्ञातपणा है सो अज्ञातपणा नेत्रादिक इंद्रियोंकरिकै जान्या जावै नहीं। काहेतैं ता अज्ञातपणेके जानणेविषे नेत्रादिक इंद्रियोंका सामर्थ्य है नहीं। और सो घटादिकोंका अज्ञातपणा अनुमानप्रमाणकरिकैभी जान्या जावै नहीं। काहेतैं जैसे पर्वतविषे स्थित अग्निके जनावणेहारा धूमरूप लिंग होवै है। तैसे ता अज्ञातपणेके जनावणेहारा कोई लिंग है नहीं। तहां जो वादी ता अज्ञातपणेकी सिद्धिवासतै या प्रकारका अनुमान करै। यह घट पूर्व अज्ञात था इदानीं कालविषे ज्ञात होणेतैं। सो या प्रकारके अनुमानकरिकैभी सो घटका अज्ञातपणा सिद्ध होवै नहीं। काहेतैं जहां एकही घटविषे व्यवधानतैं रहित 'अयं घटः, अयं घटः' या प्रकारके अनेक ज्ञान होवै हैं। तहां प्रथम ज्ञानकूं छोडिकै द्वितीय तृतीय आदिक ज्ञानोंका विषय जो घट है ता घटविषे इदानीं कालविषे ज्ञातपणारूप हेतु तौ रहे है। परंतु पूर्व अज्ञातपणारूप साध्य रहै नहीं। काहेतैं ता स्थलविषे पूर्वपूर्व ज्ञानकरिकै ज्ञात घटकूंही उत्तर उत्तर ज्ञान विषय करे हैं। यातैं साध्यके अभाववाले घटविषे रहणेहारा सो हेतु व्यभिचारी है। ता व्यभिचारी हेतुतैं पूर्व अज्ञातत्वरूप साध्यकी सिद्धि होइ सकै नहीं। किंवा। इदानीं ज्ञातत्वरूप हेतुका पूर्व अज्ञातत्वरूप साध्यतैं भेद सिद्ध होवै नहीं।

काहेतैं जो पूर्व अज्ञात हुआ इदानीं कालविषे ज्ञात होवै है ताकूंही इदानीं कालविषे ज्ञात कहे हैं । और जो हेतु अपणे साध्यतैं अभिन्न होवै है । सो हेतु सिद्धसाधनतादोषवाला होवै है । या कारणतैंभी ता दुष्ट हेतुतैं अज्ञातत्वरूप साध्यकी सिद्धि होवै नहीं । किंवा । घटादिकोंकी अज्ञात अवस्थाके ज्ञानतैं विना तिन घटादिकोंविषे स्वविषयक प्रत्यक्षज्ञानके प्रति कारणता ग्रहण करी जावै नहीं । काहेतैं जिस वस्तुविषे जिस कार्यतैं नियमकरिकै पूर्ववर्त्तिपणेका ज्ञान होवै है । तिसी वस्तुविषे ता कार्यकी कारणता ग्रहण करी जावै है । जैसे मृत्तिकाविषे घटरूप कार्यतैं पूर्ववर्त्तिपणेके ज्ञान हुएतैं अनंतरही ता मृत्तिकाविषे घटके कारणताका ज्ञान होवै है । पूर्ववर्त्तिपणेके ज्ञानतैं विना कारणताका ज्ञान होवै नहीं । यातैं ता घटके प्रत्यक्षज्ञानतैं पूर्व ता घटके अज्ञात अवस्थाका ज्ञान अवश्य अंगीकार करा चाहिये । किंवा । ता घटके अज्ञात अवस्थाका ज्ञान जो नहीं होता होवै । तौ मैं घटकूं नहीं जानता हूं या प्रकारके सर्व लोकोंके अनुभवका विरोध होवैगा । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । अज्ञातरूप स्फुरण अपणे स्वयंज्योतिरूपकरिकै प्रकाशमान हुआ अपणेविषे कल्पित घटादिक पदार्थोंकूंभी प्रकाश करे है । यातैं ता अज्ञातरूप स्फुरणविषेही तिन घटादिक पदार्थोंका कल्पितपणा सिद्ध होवै है । जो कदाचित् सो अज्ञातरूप स्फुरण तिन घटादिक पदार्थोंकूं प्रकाश नहीं करता होवै । तौ तिन घटादिक पदार्थोंकूं स्वभावतैं जड होणेतैं तिन घटादिकोंका अज्ञातपणा तथा ता अज्ञातपणेका ज्ञान दोनों नहीं सिद्ध होवैंगे । और ता सत् वस्तुरूप स्फुरणविषे जो अज्ञातपणा है सो अपणेविषे कल्पित अज्ञानकरिकैही है । यह वार्त्ता (अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यंति जंतवः) या वचनकरिकै श्रीभगवान् आपही आगे कहैंगे । इतनै कहणेकरिकै ता सत् वस्तुरूप स्फुरणविषे विभुपणा सिद्ध करा । तहां श्रुति । "महद्भूतमनंतमपारं विज्ञानघन एवेति सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म इति" । अर्थ यह । सो सत् वस्तुरूप स्फुरण महान्‌रूप है तथा अनंत है तथा अपार है तथा विज्ञानघन है तथा सत्य है तथा ज्ञानरूप है तथा अनंत है इति । यह श्रुति ता सत् वस्तुरूप स्फुरणविषे महत्‌पणा तथा अनंतपणा कथन करे है । तहां ता ज्ञानरूप स्फुरणविषे कल्पित जो यह सर्व जगत् है ता सर्व जगत्के साथि ता स्फुरणका जो कल्पित तादात्म्यसंबंध है यहही ता स्फुरणविषे महत्पणा है । और देशकालवस्तुपरिच्छेदतैं जो रहितपणा है यहही ता स्फुरणविषे अनंतपणा है । इतनै कहणेकरिकै शून्यवादीयोंका मतभी खंडन करा । काहेतैं अधिष्ठानवस्तुतैं विना कोईभी भ्रम होवै नहीं । तथा अधिष्ठानतैं विना ता भ्रमका बाधभी होवै नहीं । और शून्यवादीयोंके मतविषे कोई सत् वस्तु अधिष्ठानतैं है नहीं । यातैं तिनोंका मत असंगत है । तहां श्रुति । "पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परागतिः" । अर्थ यह । स्वयंज्योतिरूप पुरुषतैं परे कोईभी वस्तु है नहीं । किंतु

सो स्वयंज्योतिपुरुषही या सर्व जगत्का अवधिरूप है तथा परा गतिरूप है इति । यह श्रुति सर्व जगत्के बाधका अवधिरूपकरिकै ता स्वयंज्योति पुरुषका कथन करे है । यह वार्त्ता भगवान् भाष्यकारोंनैंभी कथन करी है । " सर्वं विनश्यद्वस्तुजातं पुरुषांतं विनश्यति पुरुषो विनाशहेत्वभावान्न विनश्यति " । अर्थ यह । या स्थूल प्रपंचतैं आदिलैके अव्याकृतपर्यंत जितने की नाशवान् वस्तु हैं ते सर्व वस्तु चैतन्यरूप पुरुषपर्यंत नाशकूं प्राप्त होवै हैं । और तिस पुरुषके नाश करणेहारा कोई कारण है नहीं । यातैं सो पुरुष नाशकूं प्राप्त होवै नहीं इति । इतनै कहणेकरिकै क्षणिक विज्ञानवादीयोंका मतभी खंडन करा । काहेतैं जो कदाचित् आत्मा क्षणिक होवै । तौ जो मैं बाल्य अवस्थाविषे अपणे मातापिताकूं अनुभव करता भया सोईही मैं अबी वृद्ध अवस्थाविषे ता मातापिताकूं स्मरण करता हूं या प्रकारका प्रत्यभिज्ञाज्ञान सर्व प्राणीयोंकूं होवै है सो नहीं होणा चाहिये । काहेतैं जो पुरुष जिस वस्तुकूं देखे है सोईही पुरुष कालांतरविषे तिस वस्तुकूं स्मरण करे है । अन्य पुरुषकरिकै देखी हुई वस्तुका अन्य पुरुषकूं स्मरण होवै नहीं । यातैं सो आत्मा क्षणिक नहीं । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । सर्वत्र व्यापक तथा एक अद्वितीयरूप जो स्वप्रकाश स्फुरणरूप सत् वस्तु है सो स्फुरणरूप सत् वस्तु पूर्व उक्त देशकालादिक सर्व परिच्छेदतैं रहित है । यातैं ता सत् वस्तुका अभाव कदाचित्भी नहीं होवै है । यह जो श्रीभगवान्नैं कह्या है सो यथार्थ कह्या है इति ॥ १७ ॥ ❀ ॥ शंका । पूर्व आपनैं स्फुरणरूप सत् वस्तुकूं अविनाशी कह्या । सो संभवता नहीं । काहेतैं जैसे पान, काथा, चूना, सुपारी, या चारोंका समुदायरूप जो तांबूल है तिस तांबूलविषे रक्तता उत्पन्न होवै है । तैसे पृथिवी, जल, तेज, वायु या चारि भूतोंका समुदायरूप जो यह स्थूल शरीर है ता स्थूल शरीरविषे एक चैतन्यताधर्म उत्पन्न होवै है । यातैं सो चैतन्यरूप स्फुरण या स्थूल शरीरकाही धर्म है । और यह स्थूल शरीर तौ क्षणक्षणविषे नाशकूं प्राप्त होवै है । यातैं ता शरीररूप धर्मीके नाश हुए । ता ज्ञानरूप स्फुरणकाभी अवश्यकरिकै नाश होवै गा । या प्रकारकी भूतचैतन्यवादीयोंकी शंकाके हुए तिन भूतचैतन्यवादीयोंके खंडन करणेवासतै श्रीभगवान् (नासतो विद्यते भावो) या पूर्व कहे हुए वचनका अर्थ अबी विस्तारतैं निरूपण करे हैं ।

(मू. श्लो.) अंतवंत इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः । अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥१८॥ (पदच्छेदः) अंतवंतः । इमे । देहाः । नित्यस्य । उक्ताः । शरीरिणः । अनाशिनः अप्रमेयस्य तस्मात् । युध्यस्व । भारत ॥ १८ ॥ (पदार्थः) हे भारत

नित्य तथा शरीररूप उपाधिवाला तथा नाशतैं रहित तथा प्रमेयभावतैं रहित ऐसा जो स्फुरणरूप आत्मा है ता एक आ-
त्माकेही यह नाशवाँन् सर्व देह कथन करे हैं तिसं कारणतैं तूं युद्ध कर ॥ १८ ॥

टीका । वृद्धिक्षयवाले होणेतैं शरीर नामकरिकै प्रसिद्ध तथा नाशरूप अंतवाले जो यह प्रत्यक्ष देह हैं । इहां (देहाः) या बहुवचनकरिकै स्थूल सूक्ष्म कारणरूप जितने की विराट् सूत्र अव्याकृत नामा समष्टि व्यष्टि शरीर हैं तिन सर्व शरीरोंका ग्रहण करणा । और नित्य तथा विनाशतैं रहित तथा आध्यासिकसंबंधकरिकै शरीरवाला ऐसा जो स्वप्रकाश स्फुरणरूप आत्मा है । ता एकही आत्माके ते स्थूल सूक्ष्म कारणरूप सर्व शरीर दृश्यरूप हैं तथा भोगरूप हैं । यातैं श्रुतिभगवतीनैं तथा ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंनैं ते सर्व देह दृश्यत्वरूपकरिकै तथा भोग्यत्वरूपकरिकै ता एकही आत्माके संबंधी कथन करे हैं । तहां तैत्तिरीयक श्रुतिविषे अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनंदमय या पंच कोशोंकी कल्पना करिकै तिन सर्व कोशोंका अधिष्ठानरूप तथा अकल्पित पुच्छप्रतिष्ठारूप ब्रह्म कथन करा है । तहां पंचीकृत पंचमहाभूत जो हैं तथा तिन पंचमहाभूतोंका कार्यरूप जो सर्व मूर्त्तपदार्थोंका समुदायरूप विराट् है । सो अन्नमयकोश है । यह स्थूल समष्टि है । और ता स्थूल समष्टिका कारणरूप जो अपंचीकृत पंचमहाभूत हैं तथा तिन अपंचीकृत भूतोंका कार्यरूप जो सर्व अमूर्त्तपदार्थोंका समुदायरूप सूत्रनामा हिरण्यगर्भ है सो सूक्ष्म समष्टि है । तहां "त्रयं वा इदं नामरूपं कर्मेति" या बृहदारण्यक उपनिषद्की श्रुतिनैं ता सूक्ष्म समष्टिकूं नाम, रूप, कर्म यह तीन रूप कह्या है । तहां सो सूक्ष्म समष्टि अपणेविषे स्थित कर्मरूपताकरिकै जबी क्रियाशक्तिमात्रकूं ग्रहण करे है तबी प्राणमय संज्ञाकूं प्राप्त होवै है । और सो सूक्ष्म समष्टि अपणेविषे स्थित नामरूपताकरिकै जबी ज्ञानशक्तिमात्रकूं ग्रहण करे है तबी मनोमय संज्ञाकूं प्राप्त होवै है । और सो सूक्ष्म समष्टि अपणेविषे स्थितरूप स्वरूपताकरिकै तिस क्रियानाम दोनोंका आश्रय होणेतैं जबी कर्तृत्वमात्रकूं ग्रहण करै है तबी विज्ञानमय संज्ञाकूं प्राप्त होवै है । या प्रकार सो एकही हिरण्यगर्भ नामा लिंगशरीररूप कोश प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय यह तीन कोशरूप होवै है । और ता हिरण्यगर्भरूप लिंगशरीरकाभी कारणरूप तथा सर्व प्रपंचके वासनारूप संस्कारोंका आश्रयरूप ऐसा जो अव्याकृत नामा मायाउपहितचैतन्य आत्मा है सो आनंदमयकोश है । ते अन्नमयादिक सर्व एकही आत्माके शरीर श्रुतिनैं कहे हैं । तहां श्रुति । "तस्यैष एव शारीर आत्मा यः पूर्वस्येति" । अर्थ यह । पूर्व अन्नमयकोशका जो सत्यज्ञान अनंतरूप शारीर आत्मा कथन करा है ।

तिस प्राणमयकोशकाभी सोईही शारीरआत्मा है । शरीरविषे जो विद्यमान होवै ताका नाम शारीर है इति । या प्रकारका श्रुतिवचन मनोमय, विज्ञानमय, आनंदमय या तीन कोशोंविषेभी जानि लेणा । यह पंचकोशोंकी प्रक्रिया आतमपुराणके दशम अध्यायविषे हम विस्तारतैं कथन करि आये हैं । अथवा (अंतवंत इमे देहाः) या श्लोकके पदोंकी या प्रकारतैं योजना करणी । तीन लोकविषे वर्त्तमान सर्व प्राणीयोंके संबंधी जो स्थावरजंगमरूप देह हैं ते सर्व देह एकही स्वयंज्योति आत्माके श्रुतिनैं कथन करे हैं । तहां श्रुति । "एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतांतरात्मा । कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च " । अर्थ यह । एक अद्वितीय आत्मादेव सर्व शरीरोंविषे गूढ होइकै स्थित है तथा सर्वव्यापी है तथा सर्व भूतोंका अंतरआत्मा है तथा पुण्यपापरूप कर्मोंका फलप्रदाता है । तथा सर्व भूतोंका अधिष्ठान है तथा बुद्धि आदिक सर्व संघातका साक्षी है तथा चैतन्यरूप है तथा अद्वितीयरूप है तथा निर्गुण है तथा निष्क्रिय है इति । यह श्रुति स्थावरजंगमरूप सर्व शरीरोंके संबंधवाले एक नित्य विभु आत्माकूं कथन करे है । शंका । हे भगवन् जितनैपर्यंत यह काल रहे है तितनैपर्यंत स्थायि होणा याका नाम नित्यपणा है । सो यह नित्यपणा कालके साथि आत्माका नाश अंगीकार किये हुएभी अविद्यादिकोंकी न्यांई ता आत्माविषे संभव होइ सकै है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं । (अनाशिनः इति) हे अर्जुन देशकालवस्तुपरिच्छेदवाले जो अविद्यादिक हैं । ते अविद्यादिक अधिष्ठान आत्माविषे कल्पित होणेतैं यद्यपि अनित्य हैं । तथापि तिन अविद्यादिकोंविषे सो यावत्काल स्थायित्वरूप गौण नित्यपणा प्रतीत होवै है । तीन कालविषे अबाध्यत्वरूप मुख्य नित्यत्व तिन अविद्यादिकोंविषे है नहीं । और देशकालवस्तुपरिच्छेदतैं रहित होणेतैं अकल्पित जो आत्मा है ता आत्माके नाशका कोई कारण है नहीं । यातैं ता आत्माविषे मुख्यही कूटस्थरूप नित्यत्व है । अविद्यादिकोंकी न्यांई परिणामिरूप नित्यत्व तथा यावत्कालस्थायित्वरूप नित्यत्व ता आत्माविषे है नहीं । शंका । ऐसे सर्व देहोंके संबंधवाले चैतन्य आत्माविषे कोई प्रमाण है अथवा नहीं है । तहां ता चैतन्य आत्माविषे कोई प्रमाण नहीं है यह द्वितीय पक्ष तौ संभवै नहीं । काहेतैं जो वस्तु किसी प्रमाणजन्य ज्ञानका विषय नहीं होवै है । सो वस्तु असत्यही होवै है । जैसे वंध्यापुत्र तथा शशशृंग किसी प्रमाणजन्य ज्ञानके विषय नहीं हैं यातैं असत्यही हैं । तैसे प्रमाणजन्य ज्ञानका अविषय होणेतैं सो चैतन्य आत्माभी असत्यही होवैगा । तथा ता आत्माके साक्षात्कारवासतै जो शास्त्रका आरंभ है सोभी व्यर्थही होवैगा । इत्यादिक सर्व दोषोंकी निवृत्ति करणेवासतै ता देही आत्माविषे कोई प्रमाण है यह प्रथम पक्ष अवश्यकरिकै अंगीकार करणा होवैगा । किंवा । 'शास्त्रयोनित्वात्' या सूत्रके व्याख्यानविषे भगवान् भाष्यकारोंनैंभी

ता आत्माकी सिद्धिविषे एक उपनिषत्‌रूप शास्त्रही प्रमाण कह्या है। तथा "तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि" या श्रुतिनैंभी ता आत्माकी सिद्धिविषे उपनिषद्‌रूप प्रमाण कथन करा है। यातैं प्रमाणका विषय होणेतैं ता चैतन्यरूप आत्माविषे सो भेदरूप वस्तुपरिच्छेद अवश्यकरिकै प्राप्त होवैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं। (अप्रमेयस्येति) हे अर्जुन जैसे घटपटादिक सर्व पदार्थोंकूं प्रकाश करणेहारा जो सूर्य भगवान् है ता सूर्यभगवान्‌कूं अपणे प्रकाशवासतै घटादिक पदार्थोंकी अपेक्षा होवै नहीं। तैसे प्रमाणप्रमेयादिक सर्व जगतकूं प्रकाश करणेहारा जो स्वप्रकाश चैतन्यरूप आत्मा है ता चैतन्य आत्माकूं अपणे प्रकाश करणेवासतै प्रमाणादिकोंकी अपेक्षा होवै नहीं। या कारणतैं सो आत्मादेव अप्रमेय है। तहां श्रुति। "एकधैवानुद्रष्टव्यमेतदप्रमेयं ध्रुवमप्रमेयं न तत्र सूर्यो भाति न चंद्रतारकं नेमाविद्युतो भांति कुतोयमग्निः तमेव भातमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात् विज्ञातारमरे केन विजानीयात्"। अर्थ यह। यह चैतन्यआत्मा एक प्रकारकरिकैही देखणे योग्य है तथा यह आत्मादेव अप्रमेय है तथा कूटस्थ है तथा अप्रमेय है। और ता स्वयंज्योति आत्माविषे सूर्यभी प्रकाश करै नहीं तथा चंद्रमा तारागणभी प्रकाश करै नहीं तथा विद्युत्‌भी प्रकाश करै नहीं तथा यह अग्निभी प्रकाश करै नहीं और ता स्वयंज्योति आत्माके प्रकाशकूं आश्रयणकरिकैही पश्चात् यह सूर्यचंद्रमादिक सर्व पदार्थ प्रतीत होवै हैं। तथा ता आत्मादेवके स्वयंज्योतिप्रकाशकरिकैही यह सूर्यचंद्रमादिक सर्व जगत प्रकाशमान होवै है। और जिस स्वयंज्योति आत्माकरिकै यह लोक या सर्व पदार्थोंकूं जाने हैं। तिस सर्वके द्रष्टा विज्ञाता आत्माकूं यह जीव किस प्रमाणकरिकै जानि सकैगा। किंतु किसीभी प्रमाणकरिकै जानि सकै नहीं इति। ऐसे स्वयंज्योति आत्माकूं अपणे प्रकाशवासतै किसीभी प्रमाणकी अपेक्षा है नहीं। किंतु अपणेविषे कल्पित जो अज्ञान है तथा ता अज्ञानका कार्य है ता कार्यसहित अज्ञानकी निवृत्तिवासतै ता स्वयंज्योति आत्माकूं कल्पित वृत्तिविशेषकी अपेक्षा है। काहेतैं जैसा यक्ष होवै तैसाही तिसका बलि होवै है। या शास्त्रके न्यायतैं कल्पित वस्तुका कल्पित वस्तुही विरोधी सिद्ध होवै है। यातैं कल्पित अंतःकरणकी वृत्तिकरिकै कल्पित कार्यसहित अज्ञानकी निवृत्ति संभवै है। और कल्पित सर्व प्रपंचकी निवृत्ति करणेहारी सा अंतःकरणकी वृत्तिविशेष केवल तत्त्वमसि आदिक वाक्यमात्रतैंही उत्पन्न होवै है। प्रत्यक्षादिक प्रमाणोंकरिकै उत्पन्न होवै नहीं। यातैं ता वृत्तिविशेषकी उत्पत्तिवासतै शास्त्रका आरंभभी सफल है। और सो चैतन्यस्वरूप आत्मादेव सर्व कालविषे स्वतःही प्रकाशमान है तथा सर्व कल्पनाका अधिष्ठान है तथा सर्व दृश्यप्रपंचका प्रकाशक है। ऐसे स्वप्रकाश अधिष्ठान आत्माविषे वंध्यापुत्र शशशृंगादिकोंकी न्यांई असत्यरूपता संभवै

नहीं । और "एकमेवाद्वितीयं सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म" इत्यादिक शास्त्र अद्वितीय ब्रह्मतैं भिन्न सर्व जगत्‌विषे कल्पितपणेकूं कथन करता हुआ अपणेविषेभी कल्पितरूपताकूं बोधन करे है । जो कदाचित् सो शास्त्र अपणेविषे कल्पितपणेकूं नहीं बोधन करैगा । तौ सो शास्त्र सद्वितीयब्रह्मकूं अद्वितीयरूपकरिकै बोधन करता हुआ आपही अप्रमाणरूप होवैगा । और कल्पित वस्तु अकल्पित वस्तुके परिच्छेदकूं करै नहीं यह वार्त्ता पूर्व कथन करि आये हैं । यातैं ता स्वप्रकाश आत्माविषे भेदरूप वस्तुपरिच्छेदकीभी प्राप्ति होवै नहीं । किंवा । सर्व कालविषे आत्माकी स्वप्रकाशता केवल श्रुतिप्रमाणकरिकैही सिद्ध नहीं है । किंतु भगवान् भाष्यकारोंनैं युक्तितैंभी सा आत्माकी स्वप्रकाशता सिद्ध करी है । सा युक्ति यह है । जिस पुरुषकूं जिस वस्तुविषे संशय, विपर्यय, व्यतिरेकप्रमा या तीनोंविषे एकभी नहीं होवै है । तिस पुरुषकूं तिस वस्तुविषे तिन संशयादिकोंका विरोधी ज्ञान अवश्यकरिकै होवै है । या प्रकारका नियम सर्वत्र देखणेविषे आवै है । जैसे जिस पुरुषकूं जिस घटविषे घट है अथवा नहीं है या प्रकारका संशय तथा घट नहीं है या प्रकारका विपर्यय तथा घट नहीं है या प्रकारकी व्यतिरेकप्रमा या तीनोंविषे एकभी नहीं होवै है । तिस पुरुषकूं तहां तिन संशयादिक तीनोंका विरोधी 'घटो अस्ति' या प्रकारका ज्ञान अवश्यकरिकैं होवै है । जो कदाचित् सो विरोधी ज्ञान तहां नहीं होवै । तौ तिन संशयादिक तीनोंविषे कोई एक अवश्य होणा चाहिये । और आत्माविषे तौ किसीभी पुरुषकूं मैं हूं अथवा नहीं हूं या प्रकारका संशय तथा मैं नहीं हूं या प्रकारका विपर्यय तथा मैं नहीं हूं या प्रकारकी व्यतिरेकप्रमा या तीनोंविषे एकभी होवै नहीं । यातैं तिन सर्व पुरुषोंकूं सर्वकालविषे तिन संशयादिकोंका विरोधी आत्माके वास्तवस्वरूपका ज्ञान अवश्य कहणा होवैगा । जो कदाचित् सो आत्माके स्वरूपका ज्ञान नहीं होवै तौ तिन संशयादिक तीनोंविषे कोई एक अवश्य करिकै होणा चाहिये । और आत्माविषे ते संशयादिक होते नहीं । यातैं सो आत्मा सर्वकालविषे स्वप्रकाशरूप है इति । किंवा । वेदांतसिद्धांतविषे सो स्वप्रकाशज्ञान आत्माके आश्रित रहै नहीं । किंतु ता स्वप्रकाशज्ञानरूपही आत्मा है । जो कदाचित् आत्माकूं ता ज्ञानका आश्रय मानियें । तौ जो वस्तु जिस ज्ञानका आश्रयरूप कर्त्ता होवै है सोईही वस्तु तिस ज्ञानका विषयरूप कर्म होवै नहीं । किंतु ज्ञानका कर्त्ता तथा कर्म भिन्न भिन्न होवै है । यातैं ता ज्ञानकरिकै आत्माकी सिद्धि नहीं होवैगी । किंवा । आत्माकूं जो ज्ञानतैं भिन्न मानियें । तौ जो जो पदार्थ ज्ञानतैं भिन्न होवै है सो सो पदार्थ जडही होवै है । जैसे ज्ञानतैं भिन्न होणेतैं घटादिक पदार्थ जडरूप हैं । तैसे ज्ञानतैं भिन्न होणेतैं आत्माभी जडरूप होवैगा । और जो जो पदार्थ जड होवै है सो सो पदार्थ कल्पित होवै है । जैसे जड होणेतैं घटादिक पदार्थ कल्पित हैं । तैसे जड होणेतैं आत्माभी कल्पित होवैगा ।

आत्माके कल्पित हुए शून्यवादकी प्राप्ति होवैगी। यातैं आत्मा ज्ञानतैं भिन्न नहीं है। किंतु आत्मा स्वप्रकाशज्ञानस्वरूपही है। ऐसा स्वप्रकाश-ज्ञानस्वरूप हुआभी यह आत्मा अविद्यारूप उपाधिके संबंधतैं साक्षी कह्या जावै है। और वृत्तिमत् अंतःकरणरूप उपाधिके संबंधतैं प्रमाता कह्या जावै है। तिसी प्रमाताके यह चक्षु आदिक इंद्रिय करण होवै हैं। और सोईही प्रमाता तिन चक्षु आदिक इंद्रियोंद्वारा अंतःकरणके वृत्तिरूप परि-णामके साथि बाह्य घटादिक पदार्थोंकूं व्याप्य करिकै तिन घटादिकोंके आकार होवै है। तिस अंतःकरणके एकही वृत्तिरूप परिणामविषे घटावच्छिन्न चैतन्य तथा अंतःकरणावच्छिन्न चैतन्य दोनों एकताभावकूं प्राप्त होवै हैं। जैसे गृहविषे घटके प्राप्त हुए ता गृहाकाशकी तथा घटाकाशकी एकता होवै है। तैसे वृत्तिरूप उपाधिके तथा घटरूप उपाधिके एकदेशविषे स्थित हुए ता वृत्तिउपहित चेतनकी तथा घटउपहित चेतनकी एकता होवै है। तिसतैं अनंतर सो घटावच्छिन्न चैतन्य प्रमाताचैतन्यके अभेदतैं अपणे अज्ञानकूं नाश करता हुआ अपरोक्ष होवै है। और अपणा उपाधिरूप जो घट है ता घटकूं अपणे तादात्म्य अध्यासतैं सो चैतन्य प्रकाश करे है। और अत्यंत स्वच्छ जो अंतःकरणकी परिणामरूप वृत्ति है ता वृत्तिकूं ता वृत्तिउपहित चैतन्य प्रकाश करे है। इस प्रकार अंतःकरण, वृत्ति, घट या तीनोंकी अपरोक्षता होवै है। 'अहं जानामि घटं' यह तीनोंके अपरोक्षताका आकार है। इस प्रकार अंतरबाहिर स्थित सर्व अनात्मपदार्थोंकूं प्रकाश करणेहारा चैतन्य यद्यपि एकरूप है। तथापि घटादिक बाह्य पदार्थोंके प्रकाश करणेविषे ता चैतन्यकूं अंतःकरणके वृत्तिकी अपेक्षा रहे है। या कारणतैंही ता चैतन्यविषे प्रमातापणा है। और अंतःकरणके तथा ता अंतःकरणकी वृत्तियोंके प्रकाश करणेविषे ता चैतन्यकूं किसी वृत्तिकी अपेक्षा है नहीं। या कारणतैंही ता चैतन्यविषे साक्षीरूपता है। जो कदाचित् सो चैतन्य अंतःकरणके वृत्तिकूं घटादिकोंकी न्यांई दूसरी वृत्तिकी अपेक्षाकरिकै प्रकाश करैगा। तौ ता दूसरी वृत्तिकूं तीसरी वृत्तिकी अपेक्षाकरिकै प्रकाश करैगा। ता तीसरी वृत्तिकूं चतुर्थ वृत्तिकरिकै प्रकाश करैगा। या प्रकार वृत्तियोंकी धारा मानणेविषे अनवस्थादोषकी प्राप्ति होवैगी। यातैं सो साक्षी आत्मा अपणे स्वरूपतैंही अंतःकरणकूं तथा ताके वृत्तियोंकूं प्रकाश करे है। तिनोंके प्रकाशविषे वृत्तिकी अपेक्षा करै नहीं। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। जिस कारणतैं पूर्व उक्त श्रुतियुक्तियोंकरिकै यह स्वप्रकाश स्फुरणरूप आत्मा सर्वदा नित्य है तथा सर्वत्र व्यापक है तथा जन्ममरणरूप संसारतैं रहित है तथा सर्व पदार्थोंका प्रकाशक है तथा सर्वदा एकरूप है। तिस कारणतैं ऐसे अविनाशी आत्माके नाशकी शंका करिकै अपणे युद्धरूप धर्मविषे पूर्व प्रवृत्त हुए तुमारेकूं तिस युद्धतैं उपराम होणा योग्य नहीं है। या प्रकारका वचन श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति कहे हैं। (तस्माद्युध्यस्व भारत इति) तात्पर्य यह।

स्वप्रकाशज्ञानरूप आत्मा तौ कदाचित्भी नाश होवै नहीं । और यह भीष्मद्रोणादिक शरीर तौ मिथ्यारूप हैं तथा अनित्य हैं । यातैं ते शरीर आपही नष्ट हुए जैसे हैं। ऐसे अनित्य शरीरोंके हननतैं निवृत्त होइकै तूं अपणे स्वधर्मकूं नाश मत कर इति । इहां (युध्यस्व) या वचनकरिकै भगवान्नैं अर्जुनके प्रति युद्धरूप कर्मका विधान नहीं करा । किंतु ता वचनकरिकै भगवान्नैं पूर्व प्राप्त युद्धका अनुवाद मात्र करा है। काहेतैं आत्मज्ञानके उपदेशप्रसंगमैं ता युद्धरूप धर्मकी विधि संभवै नहीं । किंतु भगवान्के उपदेशतैं विनाही सो अर्जुन पूर्व युद्धविषे प्रवृत्त हुआ था। परंतु शोकमोहके वशतैं सो अर्जुन ता युद्धतैं निवृत्त होता भया । सो शोकमोह भगवान्के उपदेशजन्य ज्ञानतैं निवृत्त होता भया। यातैं 'अपवादाऽपवादे उत्सर्गस्य स्थितिः' या न्यायकरिकै (युध्यस्व) यह भगवान्का वचन अनुवादरूपही है विधिरूप नहीं । इहां पूर्व प्राप्त युद्धका शोक मोह अपवाद है। और ता शोकमोहका विचारजन्य ज्ञान अपवाद है । ता शोकमोहरूप अपवादके विचारजन्य ज्ञानरूप अपवादके विद्यमान हुए तहां पूर्व प्राप्त युद्धरूप उत्सर्गकीही स्थिति होवै है । जैसे भोजन करणेविषे प्रवृत्त हुआ क्षुधावान् पुरुष किसी अशुद्धि आदिकोंकी शंकाकरिकै ता भोजनतैं निवृत्त होइ जावै । और कोई धर्मात्मा पुरुष ताके शंकाकी निवृत्ति करिकै ता पुरुषके प्रति तूं भोजन कर या प्रकारका वचन कहै । इहां तूं भोजन कर या प्रकारका वचन विधिरूप नहीं है । किंतु पूर्व प्राप्त भोजनका अनुवादरूप है । पूर्व अप्राप्त अर्थके बोधन करणेहारा वचनही विधिरूप होवै है । और कोईक ग्रंथकार तौ (युध्यस्व) या वचनकूं विधिरूप मानिकै मोक्षकी प्राप्तिविषे ज्ञान कर्म दोनोंका समुच्चय अंगीकार करे हैं। सो तिनोंका कहणा असंगत है। काहेतैं (युध्यस्व) या वचनतैं मोक्षकी प्राप्ति ज्ञान कर्म दोनोंके समुच्चयतैं होवै है यह अर्थ प्रतीत होवै नहीं । और ज्ञान कर्मका समुच्चय आगे विस्तारतैं खंडन करैंगे इति ॥ १८ ॥ ❀ ॥ शंका । हे भगवन् (अशोच्यानन्वशोचस्त्वं) इत्यादिक वचनोंकरिकै भीष्मद्रोणादिक बांधवोंके नाशजन्य शोकके निवृत्त हुएभी तिन भीष्मद्रोणादिकोंके नाश करणेतैं उत्पन्न होणेहारा जो पाप है ता पापके निवृत्त करणेका कोई उपाय है नहीं । और जो आप यह कहो जहां शोक नहीं होवै है तहां पापभी नहीं होवै है। सो यह नियम संभवता नहीं । काहेतैं किसी पुरुषनैं अपणे शत्रु ब्राह्मणका हनन करा । तहां ता शत्रु ब्राह्मणके हनन करणेविषे ता पुरुषकूं शोक तौ होवै नहीं । यातैं ता पुरुषकूं ता ब्रह्महत्याजन्य पापभी नहीं होणा चाहिये । और शोकके नहीं हुएभी ता पुरुषकूं पाप तौ अवश्यकरिकै होवै है । यातैं भीष्मद्रोणादिकोंकूं हनन कर्त्ता जो मैं अर्जुन हूं तथा तिनोंके हनन करणेविषे हमारेकूं प्रेरणा करणेहारे जो आप हो तिन हम दोनोंकूंही ता बांधवोंकी हिंसातैं पाप अवश्यकरिकै होवैगा। यातैं तूं युद्ध कर यह जो वचन पूर्व आपनैं कथन करा

है सो असंगत है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कठवल्लीउपनिषद्के मंत्रकरिकै ता शंकाकी निवृत्ति करे हैं।

(मू. श्लो.) य एनं वेत्ति हंतारं यश्चैनं मन्यते हतं। उभौ तौ न विजानीतो नायं हंति न हन्यते ॥ १९ ॥ (पदच्छेदः) यः। एनं। वेत्ति। हंतारं। यः। च। एनं। मन्यते। हतं। उभौ। तौ। न। विजानीतः। न। अयं। हंति। न। हन्यते ॥ १९ ॥ (पदार्थः) हे अर्जुन जो पुरुष इस आत्माकूं हननकर्त्ता जाने है तथा जो पुरुष इस आत्माकूं हनन हुआ माने है ते दोनों पुरुष आत्माकूं नहीं जानते हैं काहेतें यह आत्मा किसीकूंभी नहीं हनन करे है तथा आपभी नहीं हननकूं प्राप्त होवै है ॥ १९ ॥

टीका। हे अर्जुन पूर्व हमनैं कथन करा जो अविनाशी अप्रमेयरूप देही आत्मा है। ता आत्माकूं जो पुरुष मैं इस वस्तुका हनन करणेहारा हूं या प्रकार हननरूप क्रियाका कर्त्ता जाने है। और जो पुरुष इस आत्मादेवकूं देहके हनन करिकै मैं हनन हुआ हूं या प्रकार हननक्रियाका कर्मरूप जाने है। ते दोनों पुरुष देहाभिमानि होणेतैं कर्त्ताकर्मभावतैं रहित अविकारी आत्माकूं शास्त्रप्रमाणतैं देहादिकोंतैं भिन्न करिकै जानते नहीं। क्यूं नहीं जानते जिस कारणतैं यह आत्मादेव किसीभी प्राणीकूं हनन करता नहीं। तथा आपभी किसी करिकै हनन होता नहीं। ऐसे हनन क्रियाके कर्त्ताकर्मभावतैं रहित आत्मादेवकूं जे मूढ पुरुष ता हननक्रियाका कर्त्तारूप तथा कर्मरूप माने हैं। ते मूढ पुरुष आत्माके वास्तव स्वरूपकूं जानते नहीं। इहां यद्यपि (य एनं वेत्ति हंतारं हतं वा) इतनै वचनमात्र कहणेकरिकैही ता पूर्व उक्त अर्थकी सिद्धि होइ सकै है। यातैं (य एनं वेत्ति हंतारं यश्चैनं मन्यते हतं) यह दोवार पदोंकी आवृत्ति करणी निष्फल है। तथापि सा पदोंकी आवृत्ति वाक्यके अलंकारवासतै है इति। अथवा। (य एनं वेत्ति हंतारं) या वचनकरिकै नैयायिकोंका कथन करा है। काहेतैं ते नैयायिक आत्माकूंही हननादिक क्रियावोंका कर्त्ता माने हैं। और (यश्चैनं मन्यते हतं) या वचनकरिकै चार्वाकोंका कथन करा है। काहेतैं ते चार्वाकादिक शरीरादिरूप आत्माकूं नाशवान् माने हैं। ते नैयायिक तथा चार्वाक दोनों आत्माके वास्तव स्वरूपकूं जानते नहीं। या प्रकार तिन वादियोंके भेद जनावणेवासतै सा दोवार पदोंकी आवृत्ति करी है इति। अथवा। जे पुरुष आत्माकूं हननक्रियाका कर्त्ता जाने हैं। ते पुरुष अत्यंत शूरवीर हैं। और जे पुरुष ता आत्माकूं हननक्रियाका कर्म माने हैं। ते

टीका । इष्ट अनिष्ट पदार्थोंकी प्राप्तिविषे जो रागद्वेषतैं रहित होणा है याका नाम समताभाव है । तहां सुखविषे तथा ता सुखके कारणरूप लाभविषे तथा ता लाभके कारणरूप जयविषे रागकूं न करिकै । इस प्रकार दुःखविषे तथा ता दुःखके कारणरूप अलाभविषे तथा ता अलाभके कारणरूप अजयविषे द्वेषकूं न करिकै । तूं इस युद्ध करणेवासत त्यार होउ । इस प्रकार सुखकी कामनाका परित्याग करिकै तथा दुःखके निवृत्तिकी कामनाका परित्याग करिकै केवल स्वधर्मबुद्धिकरिकै जो तूं इस युद्धकूं करैगा तौ इन गुरुब्राह्मणोंके हननजन्य पापकूं तथा नित्यकर्मके नहीं करणेजन्य पापकूं तूं प्राप्त होवैगा नहीं । और जो पुरुष इस लोकके फलकी अथवा परलोकके फलकी कामनाकरिकै युद्धकूं करै है । सो पुरुष गुरुब्राह्मणादिकोंके नाशजन्य पापकूं अवश्य प्राप्त होवै है । और जो पुरुष ता युद्धकूं नहीं करै है । सो पुरुष ता नित्यकर्मके न करणेजन्य पापकूं प्राप्त होवै है । यातैं फलकी इच्छातैं विना केवल स्वधर्म जानिकै युद्धके करणेतैं यह पुरुष ता दोनों प्रकारके पापकूं प्राप्त होवै नहीं । और (हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीं) या वचनकरिकै जो हमनैं पूर्व युद्धके फलका कथन करा है । सो आनुषंगिक फलका कथन करा है । यातैं ता पूर्व वचनकाभी विरोध होवै नहीं । यह वार्त्ता आपस्तंबऋषिनैंभी कथन करी है । " तद्यथाऽऽम्रे फलार्थे निर्मिते छाया गंध इत्यनूत्पद्येते एवं धर्म चर्यमाणमर्था अनूत्पद्यंते नोचेदनूत्पद्यंते न धर्महानिर्भवतीति " । अर्थ यह । जैसे इस लोकविषे आम्रफलोंकी प्राप्तिवासतै लगाया हुआ जो आम्रका वृक्ष है । ता वृक्षकी छाया तथा सुगंध अवश्य करिकै प्राप्त होवै है । तहां छाया सुगंधकी प्राप्ति ता वृक्षका आनुषंगिक फल है । तैसे यह धर्म हमारेकूं अवश्य करणेयोग्य है । या प्रकार स्वधर्मबुद्धिकरिकै करा हुआ जो धर्म है । ता धर्मकरिकै राज्यस्वर्गादिक अर्थभी अवश्यकरिकै प्राप्त होवै हैं । परंतु ते राज्यस्वर्गादिक पदार्थ ता धर्मका आनुषंगिक फलरूप हैं । जो कदाचित् ते राज्यस्वर्गादिक अर्थ नहींभी प्राप्त होवैं । तौभी ता करे हुए धर्मकी हानि होवै नहीं इति । यातैं युद्धकूं विधान करणेहारा शास्त्र अर्थशास्त्ररूप नहीं है । किंतु धर्मशास्त्ररूप है । इतनै कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं (पापमेवाश्रयेदस्मान्) इत्यादिक अर्जुनके वचनोंका खंडन करा इति ॥ ३८ ॥ ❀ ॥ शंका । हे भगवन् स्वधर्मबुद्धिकरिकै युद्ध करणेहारे पुरुषकूं जो आपनैं पापका अभाव कह्या सो सत्य है । तथापि हमारेप्रति युद्ध करणेका उपदेश करणा आपकूं उचित नहीं है । काहेतैं पूर्व आपनैं (य एनं वेत्ति हंतारं कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हंति कं) इत्यादिक वचनोंकरिकै विद्वान् पुरुषविषे सर्व कर्मोंका निषेध कथन करा है । और अकर्त्ता अभोक्ता शुद्धस्वरूप मैं हूं तथा इस युद्धकूं करिकै मैं ताके फलकूं भोगौंगा या प्रकारका ज्ञानभी संभवता नहीं । जिस कारणतैं अकर्तृत्वबुद्धिका तथा कर्तृत्वबुद्धिका परस्पर

विरोध है । एक अधिकरणविषे एक कालमैं ते दोनों बुद्धि होवैं नहीं । और जैसे प्रकाश तथा अंधकार या दोनोंका समुच्चय होवै नहीं । तैसे ज्ञान तथा कर्म या दोनोंकाभी समुच्चय होवै नहीं । यह अर्जुनका अभिप्राय (ज्यायसीचेत्) या श्लोकविषे आगे स्पष्ट होवैगा । यातैं एकही मैं अर्जुनके प्रति ज्ञानका उपदेश तथा कर्मका उपदेश संभवता नहीं । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए । श्रीभगवान् विद्वत् अवस्थाके तथा अविद्वत् अवस्थाके भेद-करिकै एकही पुरुषके प्रति ज्ञानका उपदेश तथा कर्मका उपदेश संभव होइ सकै है या प्रकारका उत्तर कहे हैं ।

(मू. श्लो) एषा तेभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु । बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबंधं प्रहास्यसि ॥ ३९ ॥ (पदच्छेदः) एषा । ते । अभिहिता । सांख्ये । बुद्धिः । योगे । तु । इमां । शृणु । बुद्ध्या । युक्तः । यया । पार्थ । कर्मबंधं । प्रहास्यसि ॥ ३९ ॥ (पदार्थः) हे अर्जुन हमनैं तुमारे तांई यह पूर्व उक्त बुद्धि ब्रह्मविषे कथन करी अबी कर्मयोगविषे इस वक्ष्यमाण बुद्धिकूं तूं श्रवण कर जिस बुद्धिकरिकै युक्त हुआ तूं कर्मबंधकूं परित्याग करैगा ॥ ३९ ॥

टीका । देहादिक सर्व उपाधियोंतैं भिन्न करिकै परमात्माका वास्तव स्वरूप प्रतिपादन करियें जिसकरिकै ताका नाम संख्य है ऐसा उपनिषद्रूप शास्त्र है । ता उपनिषद्करिकै जो वस्तु प्रतिपादन करियें ता वस्तुका नाम सांख्य है ऐसा जीवका वास्तव स्वरूप परमात्मा देव है । ऐसे सांख्य नामा परमात्मादेवविषे (नत्वेवाहं जातु नासं) इस श्लोकतैं आदिलैके (स्वधर्ममपि चावेक्ष्य) इस श्लोकतैं पूर्व एकविंशति २१ श्लोकोंकरिकै ज्ञानरूप बुद्धि हमनैं तुमारेप्रति कथन करी । कैसी है सा बुद्धि जन्ममरणादिक सर्व अनर्थोंके निवृत्तिका कारण है । ऐसी आत्मज्ञानरूप बुद्धि जिस अधिकारी पुरुषकूं प्राप्त भई है । तिन विद्वान् पुरुषके प्रति कदाचितभी हमनैं कर्मोंकी कर्त्तव्यता कथन करी नहीं । काहेतैं (तस्य कार्यं न विद्यते) या वचनकरिकै तिस विद्वान् पुरुषविषे सर्व कर्मोंके कर्त्तव्यताका अभाव आगे हमनैं कथन करणा है । जो कदाचित् अबी तौ मैं ता विद्वान् पुरुषविषे कर्मोंकी कर्त्तव्यताका कथन करौं । और आगे ता विद्वान् पुरुषविषे सर्व कर्मोंकी कर्त्तव्यताका अभाव कथन करौं । तौ हमारे पूर्व उत्तर वचनोंका विरोध होवैगा । यातैं विद्वान् पुरुषविषे कर्मोंकी कर्त्तव्यतामैं हमारा तात्पर्य नहीं है । किंतु हमारा यह तात्पर्य है । इस प्रकार आत्माके उपदेश किये हुएभी जो कदाचित् अपणे चित्तके दोषतैं तुमारेकूं सा ब्रह्मात्माकारबुद्धि नहीं उत्पन्न होवै तौ ता चित्तके दोषकी निवृ-

॥४५॥

त्तिकरिकै आत्मसाक्षात्कारकी प्राप्तिवासतै तुमारेकूं निष्कामकर्मयोगही अनुष्ठान करणे योग्य है । तिस कर्मयोगविषे करणे योग्य जो (सुखदुःखे समे कृत्वा) या श्लोकविषे कथन करी हुई फलकी इच्छाका त्यागरूप बुद्धि है । ता बुद्धिकूं अबी मैं विस्तारकरिकै कथन करता हूं । तूं तिस बुद्धिकूं श्रवण कर । इहां (योगे तु) या वचनविषे स्थित जो तु यह शब्द है । सो तुशब्द पूर्व कथन करी हुई ज्ञानरूप बुद्धिविषे कर्मयोगविषयत्वके अभावकूं सूचन करे है । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । जिस अधिकारी पुरुषका अंतःकरण शुद्ध हुआ है । ता अधिकारी पुरुषके प्रति तौ आत्मज्ञानकाही उपदेश करणा योग्य है । और जिस पुरुषका अंतःकरण शुद्ध नहीं भया है । ता पुरुषके प्रति तौ कर्मकाही उपदेश करणा योग्य है । यातैं ज्ञान तथा कर्म या दोनोंके समुच्चयकी शंकाकरिकै विरोधकी प्राप्ति होवै नहीं इति । अब फलका कथन करिकै ता कर्मयोगविषयक बुद्धिकी स्तुति करे हैं (बुद्ध्या यया इति) जिस व्यवसायात्मक बुद्धिकरिकै तिन निष्काम कर्मोविषे जुड्या हुआ तूं कर्मजन्य अंतःकरणकी अशुद्धिरूप बंधकूं परित्याग करैगा । इहां यह तात्पर्य है । पापकर्मजन्य जो अंतःकरणकी अशुद्धिरूप ज्ञानका प्रतिबंध है । सो प्रतिबंध तौ धर्मरूप कर्मकरिकैही निवृत्त होवै है । दूसरे किसी उपायकरिकै सो प्रतिबंध निवृत्त होवै नहीं । तहां श्रुति । "धर्मेण पापमपनुदति" । अर्थ यह । यह अधिकारी पुरुष निष्कामकर्मरूप धर्मकरिकै पापकूं निवृत्त करे है इति । और श्रवणमननादिरूप जो विचार है । सो विचार तौ पापकर्मरूप प्रतिबंधतैं रहित पुरुषके असंभावना विपरीतभावनारूप प्रतिबंधकूं निवृत्त करे है । यातैं पापकर्मरूप प्रतिबंधकी निवृत्ति करणेवासतै सो श्रवणादिरूप विचार उपदेश करा जावै नहीं । और इदानीं कालविषे तुमारा अंतःकरण अत्यंत मलिन है । यातैं अबी तुमनैं बहिरंगसाधनरूप कर्मही करणेयोग्य है । इस कालविषे तुमारेमैं श्रवणादिकोंकी योग्यताभी उत्पन्न भई नहीं । तौ ज्ञानकी योग्यता तुमारेविषे किस प्रकार होवैगी । किंतु इस कालविषे ज्ञानकी योग्यता तुमारेमैं है नहीं । यहही वार्त्ता (कर्मण्येवाधिकारस्ते) या श्लोकविषे आगे कथन करैंगे । इतनै कहणेकरिकै सांख्यबुद्धिके श्रवणादिरूप अंतरंगसाधनोंकूं छोडिकै भगवान्नैं अर्जुनके प्रति कर्मरूप बहिरंगसाधन किसवासतै उपदेश करीते हैं या प्रकारकी शंकाकाभी खंडन करा इति ॥ ३९ ॥ ❀ ॥ शंका । हे भगवन् । "तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषंति यज्ञेन दानेन तपसा नाशकेन इति" । या श्रुतिनैं विविदिषाकी प्राप्तिवासतै तथा ज्ञानकी प्राप्तिवासतै यज्ञ दान तपादिक कर्मोंका विधान करा है । तहां यज्ञदानादिक कर्मोंकरिकै साक्षात् तौ विविदिषाकी तथा ज्ञानकी प्राप्ति होवै नहीं । किंतु अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा ता विविदिषाकी तथा ज्ञानकी प्राप्ति होवै है । या कारणतैं आपनैं हमारे प्रति कर्मोंका अनुष्ठान विधान करीता है । और श्रुतिनैं तौ कर्मके फलकूं ना-

शवान् कह्या है । तहां श्रुति । " तद्यथेह कर्मजितो लोकः क्षीयते एवमेवामुत्र पुण्यजितो लोकः क्षीयते " । अर्थ यह । जैसे इस लोकविषे कर्मकरिकै जन्य होणेतैं यह गृहादिक पदार्थ नाशकूं प्राप्त होवै हैं । तैसे परलोकविषे पुण्यकर्मकरिकै जन्य होणेतैं स्वर्गादिक पदार्थभी नाशकूं प्राप्त होवै हैं इति । किंवा । जैसे स्वर्गकी प्राप्तिवासतै करे हुए ज्योतिष्टोमादिक यज्ञ हैं । ते यज्ञ काम्यकर्मरूपही होवै हैं । तैसे ज्ञानकी प्राप्तिवासतै अथवा ज्ञानकी इच्छारूप विविदिषाकी प्राप्तिवासतै करे हुए जो यज्ञदानादिक कर्म हैं । ते कर्मभी काम्यकर्मरूपही होवैंगे । और जो जो काम्यकर्म होवै हैं । सो सो सर्व अंगोंकी संपूर्णतापूर्वक अनुष्ठान करा हुआही फलका हेतु होवै है । किंचित् अंगकी वैगुण्यताकरिकै सो काम्यकर्म फलकी प्राप्ति करै नहीं । यातैं यत्किंचित् अंगोंकी न्यूनअधिकताकरिकै तिन यज्ञदानादिक कर्मोंविषे वैगुण्यदोषकी प्राप्तिभी संभवै है । और " यज्ञेन दानेन " या श्रुतिनैं विधान करे जो यज्ञदानादिक कर्म हैं । ते सर्व कर्म एक पुरुषनैं अपणे शत वर्ष आयुषकी समाप्तिपर्यंतभी करणेकूं अशक्य हैं । यातैं (कर्मबंधं प्रहास्यसि) या वचनकरिकै आपनैं कथन करा जो कर्मयोगका फल है । ता फलके प्राप्तिकी आशा हमारेकूं होती नहीं । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहे हैं ।

(मू. श्लो.) नेहाभिक्रमनाशोस्ति प्रत्यवायो न विद्यते । स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥ ४० ॥ (पदच्छेदः) न । इह । अभिक्रमनाशः । अस्ति । प्रत्यवायः । न । विद्यते । स्वल्पं । अपि । अस्य । धर्मस्य । त्रायते । महतः । भयात् ॥ ४० ॥ (पदार्थः) हे अर्जुन इस निष्कामकर्मयोगविषे कर्मके फलका नाश नहीं होवै है तथा प्रत्यवायभी नहीं होवै है तथा इस निष्कामधर्मका यत्किंचित् धर्म भी इस पुरुषकूं महान् भयतैं रक्षा करै है ॥ ४० ॥

टीका । यज्ञदानादिक कर्मोंनैं जिस फलका प्रारंभ करीता है ता फलका नाम अभिक्रम है । तहां ' तद्यथेह ' या श्रुतिवचनकरिकै कथन करा जो ता फलका नाश है । सो फलका नाश इस निष्काम कर्मरूप योगविषे कदाचित्भी होवै नहीं । काहेतैं ' तद्यथेह कर्मजितो ' या श्रुतिनैं तौ कर्मकरिकै प्राप्त लोकका नाश कथन करा है । तहां लोकशब्द केवल भोग्यपदार्थोंकाही वाचक है । और निष्कामकर्मरूप योगका फलरूप जो चित्तकी शुद्धि है । सा चित्तकी शुद्धि पापोंका क्षयरूप है । यातैं ता चित्तकी शुद्धिरूप फलविषे ता लोकशब्दकी अर्थरूपता है नहीं । या कारणतैं ता चित्तशुद्धिरूप

फलका स्वर्गादिकोंकी न्यांई क्षय संभवै नहीं। किंवा। तत्त्वसाक्षात्कारपर्यंत रहणेहारी जो विविदिषा है । सा विविदिषाही तिन यज्ञदानादिक कर्मोंका फलरूप है। और सो तत्त्वसाक्षात्कार व्यवधानतैं विनाही अज्ञानकी निवृत्तिरूप फलका जनक है । जैसे सूर्यादिकोंका प्रकाश व्यवधानतैं विनाही अंधकारकी निवृत्ति करे है । यातैं सो तत्त्वसाक्षात्कार अज्ञानकी निवृत्तिरूप फलकूं न उत्पन्न करिकै नाश होवै नहीं । किंतु अज्ञानकी निवृत्तिरूप फलकूं उत्पन्न करिकैही सो तत्त्वसाक्षात्कार नाश होवे है। जैसे सूर्यादिकोंका प्रकाश अंधकारकूं नाश करिकैही निवृत्त होवै है। या प्रकारके अभिप्रायकरिकैही श्रीभगवान्नैं (नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति) या प्रकारका वचन कह्या है। यह वार्त्ता अन्य शास्त्रविषेभी कथन करी है। तहां श्लोक॥ " तद्यथेहेति या निंदा सा फले नतु कर्मणि। फलेच्छां तु परित्यज्य कृतं कर्म विशुद्धिकृत् "। अर्थ यह। ' तद्यथेह कर्मजितो लोकः क्षीयते ' या श्रुतिवचननैं कथन करी जो निंदा है। सा निंदा स्वर्गादिक फलविषयकही है। कोई यज्ञदानादिक कर्मविषयक सा निंदा नहीं है। जिस कारणतैं फलकी इच्छाका परित्याग करिकै करे हुए ते यज्ञदानादिक कर्म या अधिकारी पुरुषके अंतःकरणकी शुद्धि करणेहारे हैं इति। तथा तिन यज्ञदानादिक कर्मोंके अंगोंकी न्यूनअधिकतारूप वैगुण्यकरिकै करा हुआ जो तिन कर्मोंका वैगुण्यरूप प्रत्यवाय है। सो प्रत्यवायभी इस निष्कामकर्मरूप योगविषे है नहीं । काहेतैं ' तमेतं वेदानुवचनेन ' या श्रुतिनैं यज्ञदानादिक नित्यकर्मोंकाही प्रतिबंधक पापोंकी निवृत्तिद्वारा विविदिषाविषे उपयोग कथन करा है । तिन नित्यकर्मोंविषे सर्व अंगोंकी संपूर्णताका नियम होवै नहीं । और ' तमेतं वेदानुवचनेन ' या श्रुतिनैं यज्ञदानादिक काम्यकर्मोंकाभी ता विविदिषाविषे उपयोग कथन करा है । या पक्षके अंगीकार किये हुएभी फलकी इच्छातैं रहित होणेतैं तिन यज्ञदानादिक काम्यकर्मोंकूंभी नित्यकर्मकीही तुल्यता है। काहेतैं काम्यकर्मरूप जो अग्निहोत्र है। तथा नित्यकर्मरूप जो अग्निहोत्र है। तिन दोनों अग्निहोत्रोंविषे स्वरूपतैं तौ कोई विशेषता है नहीं। किंतु जो अग्निहोत्र स्वर्गादिक फलकी इच्छापूर्वक करा जावै है । ता अग्निहोत्रविषे काम्यकर्मरूपताका व्यवहार होवै है। और जो अग्निहोत्र स्वर्गादिक फलकी इच्छातैं विना करा जावै है। ता अग्निहोत्रविषे नित्यकर्मरूपताका व्यवहार होवै है। इस प्रकार स्वर्गादिक फलकी इच्छाकरिकै तथा ता इच्छाके अभावकरिकैही ता अग्निहोत्रविषे काम्यकर्मरूपता तथा नित्यकर्मरूपता सिद्ध होवै है। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । स्वर्गादिक फलकी प्राप्तिवासतै करे हुए जो यज्ञदानादिक कर्म हैं। तिन सकाम कर्मोंविषे तौ यथाविधिपूर्वक सर्व अंगोंकी पूर्णता करणेकाही नियम है। जो कदाचित् यह सकाम पुरुष यथाविधिपूर्वक तिन कर्मोंके सर्व अंगोंकी पूर्णता नहीं करैगा। तौ ते यज्ञदानादिक कर्म वैगुण्यभावकूं प्राप्त हुए ता फ-

लकी प्राप्ति नहीं करैंगे । और फलकी इच्छातैं रहित होइकै केवल अंतःकरणकी शुद्धिवासतै करे हुए जो यज्ञदानादिक कर्म हैं । तिन यज्ञदानादिक निष्काम कर्मोंकी तौ यजमानरूप कर्त्तातैं भिन्न प्रतिनिधि आदिकोंकरिकैभी समाप्ति होइ सकै है । यातैं तिन निष्काम कर्मोंविषे अंगोंका वैगुण्यजन्य प्रत्यवाय होवै नहीं । इहां यजमान पुरुष किसी रोगादिक निमित्ततैं जिस कर्मके करणेविषे समर्थ नहीं होवै । तिस कर्मकूं जिस ब्राह्मणद्वारा समाप्त करावै है । ता ब्राह्मणका नाम प्रतिनिधि है इति । किंवा । ' तमेतं वेदानुवचनेन ' या श्रुतिनैं विधान करे जो अंतःकरणकी शुद्धिवासतै यज्ञदानादिक धर्म हैं । ता धर्मके मध्यविषे संख्याकरिकै अथवा अंगोंकरिकै अत्यंत स्वल्प जो धर्म भगवत्के आराधनवासतै अनुष्ठान करा है । सो स्वल्प धर्मभी या अधिकारी पुरुषकूं जन्ममरणरूप संसारके महान् भयतैं रक्षा करे है । यह वार्त्ता स्मृतिविषेभी कथन करी है । तहां श्लोक । " सर्वपापप्रसक्तोपि ध्यायन्निमिषमच्युतं । भूयस्तपस्वी भवति पंक्तिपावनपावनः " । अर्थ यह । सर्व पापकर्मोंविषे प्रीतिवाला हुआभी यह पुरुष अनन्य होइकै एक निमेषमात्रभी अच्युतपरमात्मादेवका ध्यान करता हुआ ता ध्यानके प्रभावतैं पुनः तपस्वी होवै है । तथा पंक्तिके पवित्र करणेहारे पुरुषोंकाभी पवित्र करणेहारा होवै है इति । और ' तमेतं वेदानुवचनेन ' या श्रुतिवचनविषे सर्व कर्मोंके समुच्चयका विधान करणेहारा कोई वचन है नहीं । यातैं अंतःकरणके अशुद्धिकी न्यून अधिकताकरिकै तिन यज्ञदानादिक कर्मोंके अनुष्ठानकी न्यून अधिकताभी संभव होइ सकै है । यातैं (कर्मबंधं प्रहास्यसि) यह हमारा वचन यथार्थ है इति ॥ ४० ॥ ❀ ॥ अब इस पूर्वश्लोकविषे कथन करे हुए अर्थके स्पष्ट करणेवासतै ' तमेतं वेदानुवचनेन ' या श्रुतिनैं विधान करे जो यज्ञदानादिक कर्म हैं तिन कर्मोंविषे एक अर्थता निरूपण करे हैं ।

(मू. श्लो.) व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनंदन । बहुशाखा ह्यनंताश्च बुद्धयो व्यवसायिनां ॥ ४१ ॥ (पदच्छेदः) व्यवसायात्मिका । बुद्धिः । एका । इह । कुरुनंदन । बहुशाखाः । हि । अनंताः । च । बुद्धयः । अव्यवसायिनां ॥ ४१ ॥ (पदार्थः) हे अर्जुन इस श्रेयके मार्गविषे आत्मतत्त्वका निश्चयरूप बुद्धि एकही विवक्षित है और सकाम पुरुषोंकी बुद्धियां तौ बहुत शाखावाली हैं तथा अनंत हैं ॥ ४१ ॥

टीका । हे अर्जुन इस मोक्षरूप श्रेयके मार्गविषे अथवा ' तमेतं वेदानुवचनेन ' इस श्रुतिवचनविषे ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास या चारि आ-

श्रमोंकूं आत्मतत्त्वकी निश्चयरूप बुद्धि एकही सिद्ध करणेकूं विवक्षित है। काहेतैं वेदानुवचनेन, यज्ञेन, दानेन, तपसा, अनाशकेन या पदोंके अंतविषे स्थित जो तृतीयाविभक्ति है। ता तृतीयाविभक्तिनैं तिन वेदानुवचनादिकोंविषे परस्पर निरपेक्षसाधनरूपता बोधन करीती है। तहां गुरुके मुखतैं वेदोंके अध्ययन करणेका नाम वेदानुवचन है। सो वेदोंका अध्ययन ब्रह्मचारीके सर्व धर्मोंविषे प्रधान धर्म है। यातैं ता वेदानुवचनकरिकै ब्रह्मचारीके सर्व धर्मोंका ग्रहण करणा। तथा यज्ञ, दान यह दोनों गृहस्थके सर्व धर्मोंविषे प्रधान धर्म हैं। यातैं ता यज्ञदानकरिकै गृहस्थके सर्व धर्मोंका ग्रहण करणा॥ और कृच्छ्रचांद्रायणका नाम तप है। सो तप वानप्रस्थके सर्व धर्मोंविषे प्रधान धर्म है। यातैं ता तपकरिकै वानप्रस्थके सर्व धर्मोंका ग्रहण करणा।। तहां मृत्युका कारण जो अनशनव्रत है ताकी निवृत्ति करणेवासतै तिस तपका अनाशक यह विशेषण दिया है। इस प्रकार सर्व भूतप्राणीयोंकूं अभयदान तथा प्रणवादिक मंत्रोंका जप इत्यादिक संन्यासीके धर्मभी जानि लेणे इति। और भगवान् भाष्यकारोंनैं तौ या श्लोकका यह व्याख्यान करा है। सांख्यविषयक तथा योगविषयक जो बुद्धि है। सा बुद्धि एकही फलका जनक होणेतैं एक है। और सा बुद्धि निर्दोषवेदवाक्योंतैं जन्य होणेतैं व्यवसायात्मिका। है क्या सर्व विपरीतबुद्धियोंका बाधक है। और अव्यवसायी अज्ञानी पुरुषोंकी जो बहुत शाखावाली अनंत बुद्धियां हैं। ते सर्व बुद्धियां विपरीत होणेतैं ता व्यवसायात्मिक बुद्धिकरिकै बाध्य हैं इति। और किसी टीकाविषे तौ यह अर्थ करा है। परमेश्वरके आराधनकरिकैही मैं इस संसारसमुद्रकूं तरौंगा या प्रकारकी निश्चयरूपा एकनिष्ठा बुद्धिही इस कर्मयोगविषे होवै है इति। सर्व प्रकारतैं ज्ञानकांडके अनुसारकरिकै (स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्) या वचनका अर्थ भली प्रकारतैं सिद्ध होवै है। और कर्मकांडविषे तौ तिस तिस स्वर्गादिक फलकी कामनावाले अव्यवसायी पुरुषोंकी बुद्धियां तौ बहुत शाखावाली होवै हैं। क्या कामनावोंके अनेक भेदतैं ते बुद्धियांभी अनेक भेदवाली होवै हैं। तथा कर्मफल गुणफल आदिकोंकूं विषय करणेहारी उपशाखावोंके भेदतैं ते बुद्धियां अनंत होवै हैं इति। तहां (अनंता हि) या वचनविषे स्थित जो हि यह शब्द है। सो हिशब्द तिन सकाम पुरुषोंके बुद्धियोंविषे अनंतरूपताकी प्रसिद्धि बोधन करणेवासते है। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। अंतःकरणकी शुद्धि करणेवासतै जो निष्काम कर्म हैं। तिन निष्काम कर्मोंविषे सकाम कर्मोंकी अपेक्षाकरिकै महान् विलक्षणता है इति॥ ४१ ॥ ❀ ॥ शंका। हे भगवन् जैसे निष्काम अधिकारी पुरुषोंकूं सा व्यवसायात्मिका बुद्धि प्राप्त होवै है। तैसे सकाम पुरुषोंकूं सा व्यवसायात्मिका बुद्धि क्यूं नहीं प्राप्त होती। किंतु तिन सकाम पुरुषोंकूंभी सा व्यवसायात्मिका बुद्धि प्राप्त होणी चाहिये। जिस कारणतैं शास्त्ररूप प्रमाण तौ तिन दोनोंकूं तुल्यही प्राप्त है। ऐसी

अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् प्रतिबंधके वशतैं तिन सकाम पुरुषोंकूं सा व्यवसायात्मिका बुद्धि नहीं प्राप्त होवै है या प्रकारका उत्तर तीन श्लोकोंकरिकै कथन करे हैं ।

(मू. श्लो.) यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदंत्यविपश्चितः । वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥ ४२ ॥ कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदां । क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥४३॥ भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसां ॥ व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥ ४४ ॥ (पदच्छेदः) यां । इमां । पुष्पितां । वाचं । प्रवदंति । अविपश्चितः । वेदवादरताः । पार्थ । न । अन्यत् । अस्ति । इति । वादिनः । ४२ । कामात्मानः । स्वर्गपराः । जन्मकर्मफलप्रदां । क्रियाविशेषबहुलां । भोगैश्वर्यगतिंप्रति । । ४३ । भोगैश्वर्यप्रसक्तानां । तया । अपहृतचेतसां । व्यवसायात्मिका । बुद्धिः । समाधौ । न । विधीयते ॥ ४४ ॥ (पदार्थः) हे अर्जुन ते विचारहीन पुरुष जिस प्रसिद्ध कर्मकांडरूप वाणीकूं कथन करे हैं कैसी है सा वाणी अविचारतैं रमणीक है तथा जन्मकर्मफलके देणेहारी है तथा भोगऐश्वर्यके प्राप्तिवासतै अग्निहोत्रादिक कर्मोंकूं विस्तारतैं प्रतिपादन करणेहारी है ऐसी वाणीकूं कहणेहारे ते विचारहीन पुरुष कैसे हैं वेदके अर्थवादोंविषे प्रीतिमान् हैं तथा कर्मके फलतैं भिन्न कोई ज्ञानका फल नहीं है याप्रकार कथन करणेहारे हैं तथा कामरूप हैं तथा स्वर्गही है उत्कृष्ट जिनोंकूं तथा भोगऐश्वर्यविषे है आसक्ति जिनोंकी तथा ता वाणीकरिकै आच्छादित हुआ है चित्त जिनोंका ऐसे बहिर्मुख पुरुषोंके अंतःकरणविषे सा व्यवसायात्मिका बुद्धि नहीं होवै है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

टीका । हे अर्जुन "स्वाध्यायोऽध्येतव्यः" । अर्थ यह । या अधिकारी पुरुषनैं वेद अध्ययन करणा इति । या अध्ययनविधितैं प्राप्त होणेकरिकै अत्यंत प्रसिद्ध जो यह कर्मकांडरूप वाणी है । कैसी है सा वाणी । जैसे निर्गंध पुष्पोंकरिकै युक्त पलाशका वृक्ष दूरसैं रमणीक लागे है । तैसे जा वाणी अविचारतैंही रमणीक लागे है । काहेतैं ता वाणीकरिकै केवल स्वर्गादिक फलोंका तथा यज्ञादिक साधनोंका तथा तिन दोनोंके परस्पर संबंधकाही ज्ञान होवै है । कोइ निरतिशय आनंदरूप फलकी प्राप्ति होवै नहीं । शंका । हे भगवन् ता कर्मकांडरूप वाणीतैं निरतिशयानंदरूप फलकी प्राप्ति नहीं होती याकेविषे क्या

कारण है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं (जन्मकर्मफलप्रदां इति) अपूर्व शरीरइंद्रियादिकोंका संबंधरूप जो जन्म है। तथा ता जन्मके अधीन तिस तिस वर्णआश्रमके अभिमानजन्य जो अग्निहोत्रादिक कर्म हैं। तथा तिन कर्मोंके अधीन जो पुत्रपशुस्वर्गादिरूप नाशवान् फल है। ता जन्मकर्मफल तीनोंकूंही घटीयंत्रकी न्यांई विच्छेदतैं रहित यह कर्मकांडरूप वाणी प्राप्त करे है इति। शंका। हे भगवन् सा वाणी तिन जन्मादिकोंकीही प्राप्ति करे है। यह वार्त्ता कैसे जानी जावै। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं। (भोगैश्वर्यगतिं प्रति क्रियाविशेषबहुलां इति) अमृतका पान तथा उर्वशी आदिक अप्सरावोंके साथि विहार तथा पारिजातवृक्षका सुगंध इत्यादिक पदार्थोंकी प्राप्तिजन्य जो भोग है। तथा ता भोगका कारणरूप जो देवतादिकोंका स्वामीपणारूप ऐश्वर्य है। ता भोग ऐश्वर्य दोनोंकी प्राप्तिके प्रति साधनभूत जो अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास, ज्योतिष्टोम इत्यादिक क्रियाविशेष हैं। तिन क्रियाविशेषोंकरिकै जा वाणी बहुत विस्तारकूं प्राप्त होइ रही है। क्या भोग ऐश्वर्य या दोनोंके साधनभूत क्रियाविशेषोंकूं जा वाणी अत्यंत विस्तारतैं प्रतिपादन करणेहारी है। सो कर्मकांडविषे ज्ञानकांडकी अपेक्षाकरिकै अत्यंत विस्तारपणा सर्वत्र प्रसिद्धही है। ऐसी कर्मकांडरूप वाणीकूं परमार्थरूप स्वर्गादिक फलपरता अंगीकार करे हैं। शंका। हे भगवन् ता कर्मकांडरूप वाणीकूं स्वर्गादिरूप फलपरता कौन अंगीकार करे हैं। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं (अविपश्चितः इति) जे पुरुष विचारजन्य तात्पर्यज्ञानतैं रहित हैं। ते पुरुषही ता वाणीकूं स्वर्गादिरूप फलपरता माने हैं। या कारणतैंही ते सकाम पुरुष वेदविषे स्थित जो "अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति"। अर्थ यह। चातुर्मास्ययज्ञके करणेहारे पुरुषकूं अक्षय सुकृत होवै है इत्यादिक अर्थवाद हैं ते अर्थवाद यथार्थही हैं या प्रकारका मिथ्या विश्वास करिकै संतोषकूं प्राप्त हुए हैं। या कारणतैंही ते सकाम पुरुष या प्रकारके वचन कहे हैं। कर्मकांडकी अपेक्षाकरिकै कोई ज्ञानकांड भिन्न नहीं है। किंतु सो ज्ञानकांड कर्मकांडकाही शेषरूप है। तहां ज्ञानकांडविषे स्थित जो तत्पदार्थके बोधक वचन हैं। ते वचन तौ देवताके स्वरूपकूं बोधन करे हैं। और त्वंपदार्थके बोधक जो वचन हैं। ते वचन तौ कर्मकर्त्ता यजमानके स्वरूपकूं बोधन करे हैं। और तत्त्वंपदार्थके अभेदकूं बोधन करणेहारे जो वचन हैं। ते वचन तौ कर्मकर्त्ता पुरुष साक्षात् ईश्वररूप है या प्रकार ता कर्मकर्त्ता पुरुषकी स्तुति करे हैं। इस प्रकार संपूर्ण वेद कर्मपरही हैं। और कर्मका फलरूप जो स्वर्गादिक हैं। तिन स्वर्गादिकोंकी अपेक्षाकरिकै दूसरा कोई ज्ञानका निरतिशय आनंदरूप फल है नहीं। इस प्रकार ते सकाम पुरुष अनेक प्रकारकी कल्पना करिकै सर्व प्रकारतैं ज्ञानकांडतैं विरुद्ध अर्थकेही कहणेहारे हैं। शंका। हे भगवन् ते बहिर्मुख सकाम पुरुष निरतिशय आनंदरूप मोक्ष-

विषे किसवासतै द्वेष करें हैं। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए। श्रीभगवान् कहे हैं (कामात्मानः इति) हे अर्जुन कामनावोंके विषयरूप जो अनेक प्रकारके विषय हैं। तिन विषयोंकरिकै जिनोंका चित्त सर्वदा व्याकुल होइ रह्या है। या कारणतैं ते काममय पुरुष साक्षात् मोक्षविषेभी द्वेष करे हैं। शंका। हे भगवन् ते सकाम पुरुष जैसे दूसरे विषयोंकी कामना करे हैं। तैसे निरतिशय आनंदरूप मोक्षकी कामना किसवासतै नहीं करते। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं (स्वर्गपराः इति) हे अर्जुन उर्वशी, नंदनवन, अमृत इत्यादिक विषयोंकरिकै युक्त जो स्वर्ग है। सो स्वर्गही है सर्वतैं उत्कृष्ट जिनोंकूं। ता स्वर्गतैं भिन्न दूसरा कोई पुरुषार्थ है नहीं। इस प्रकार मानणेहारे भ्रांत पुरुषोंविषे विवेकवैराग्यादिक साधनोंका अभाव है। यातैं ते भ्रांत पुरुष मोक्षकी कथामात्रकूंभी सहारि नहीं सकते। तौ तिन मूढ पुरुषोंविषे मोक्षकी इच्छा कहांतैं होणी है इति। इस प्रकार पूर्व उक्त भोग ऐश्वर्य दोनोंविषे क्षयपणा सातिशयता इत्यादिक दोषोंके अदर्शनकरिकै अत्यंत आसक्त हुआ है अंतःकरण जिनोंका। तथा ता कर्मकांडरूप वाणीकरिकै आच्छादित होइ गया है विवेकज्ञान जिनोंका। तथा 'अक्षयं ह वै' इत्यादिक अर्थवादवचन केवल स्तुतिपर हैं। प्रमाणांतरकरिकै अबाधित जो तात्पर्यका विषयभूत अर्थ है ता अर्थविषेही वेदोंकूं प्रमाणरूपता है या प्रकारके प्रसिद्ध अर्थकूंभी जे पुरुष जानणेविषे समर्थ नहीं हैं। ऐसे सकाम पुरुषोंके समाधि नामा अंतःकरणविषे सा व्यवसायात्मिका बुद्धि नहीं होवै है। अथवा समाधि या शब्दकरिकै परमात्माका ग्रहण करणा। ता परमात्माविषयक सा व्यवसायात्मिका बुद्धि तिन पुरुषोंकी होवै नहीं इति। "समाधीयतेऽस्मिन् सर्वं स समाधिः" या प्रकारकी व्युत्पत्तिकरिकै अंतःकरणविषे तथा परमात्माविषे ता समाधिशब्दकी अर्थरूपता संभव होइ सकै है। और किसी टीकाकारनैं तौ समाधिशब्दका यह अर्थ करा है। मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारके स्थितिका नाम समाधि है। ता समाधिके निमित्त तिन पुरुषोंकी सा व्यवसायात्मिका बुद्धि नहीं उत्पन्न होवै है इति। इहां यह अभिप्राय है। यद्यपि स्वर्गादिक फलकी प्राप्ति करणेहारे जो काम्य अग्निहोत्रादिक हैं। ते अग्निहोत्रादिक कर्म अंतःकरणकी शुद्धिवासतै करणेयोग्य अग्निहोत्रादिकोंतैं विलक्षण नहीं हैं। तथापि स्वर्गादिक फलकी इच्छारूप दोषके वशतैं ते काम्य अग्निहोत्रादिक कर्म अंतःकरणके शुद्धिकूं संपादन करै नहीं। यद्यपि भोगोंके अनुकूल जो अंतःकरणकी शुद्धि है। सा अंतःकरणकी शुद्धि तिन सकाम कर्मोंतैंभी होइ सकै है। तथापि सा अंतःकरणकी शुद्धि आत्मज्ञानके उपयोगी है नहीं। इसी अर्थके बोधन करणेवासतै श्रीभगवान्नैं (भोगैश्वर्यप्रसक्तानां) यह वचन पुनः कथन करा है। और फलकी इच्छातैं विना करे हुए जो अग्निहोत्रादिक कर्म हैं। ते निष्काम कर्म तौ आत्मज्ञानके उपयोगी अंतःकरणके शुद्धिकूंही

संपादन करे हैं । यातैं निष्काम विपश्चित पुरुषोंके फलविषे तथा सकाम अविपश्चित पुरुषोंके फलविषे महान् विलक्षणता सिद्ध होवै है । इसी वार्त्ताकूं आगे विस्तारकरिकै निरूपण करैंगे इति ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ❀ ॥ शंका । हे भगवन् तिन सकाम पुरुषोंकूं अपणे अंतःकरणके दोषतैं सा व्यवसायात्मिका बुद्धि मत प्राप्त होवै । परंतु ता व्यवसायात्मिका बुद्धिकरिकै अग्निहोत्रादिक कर्मोंकूं करणेहारे जो निष्काम पुरुष हैं । तिन निष्काम पुरुषोंकूं तिन अग्निहोत्रादिक कर्मोंके स्वभावतैं स्वर्गादिक फलकी प्राप्ति अवश्य होवैगी। यातैं आत्मज्ञानका प्रतिबंध सकाम निष्काम दोनोंविषे समान नही है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहे हैं ।

(मू. श्लो.) त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन । निर्द्वंद्वो नित्यसत्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥ ४५ ॥ (पदच्छेदः) त्रैगुण्यविषयाः । वेदाः । निस्त्रैगुण्यः । भव । अर्जुन । निर्द्वंद्वः । नित्यसत्वस्थः । निर्योगक्षेमः । आत्मवान् ॥ ४५ ॥ (पदार्थः) हे अर्जुन यह कर्मकांडरूप वेद त्रैगुण्यकूं विषय करणेहारे हैं तूं तिस त्रैगुण्यतैं रहित होउ तथा द्वंद्वधर्मोंतैं रहित होउ तथा नित्य सत्वविषे स्थित होउ तथा योगक्षेमतैं रहित होउ तथा आत्मवान् होउ ॥ ४५ ॥

टीका । सत्त्व, रज, तम या तीन गुणोंका जो कार्य होवै ताका नाम त्रैगुण्य है । ऐसा यह काममूलक संसार है । सो काममूलक संसार है प्रकाश्यतारूपकरिकै विषय जिनोंका तिनोंका नाम त्रैगुण्यविषया है । ऐसे यह कर्मकांडरूप वेद हैं । क्या जो पुरुष जिस फलके प्राप्तिकी कामनावाला है तिस पुरुषके प्रति यह वेद तिसी फलका बोधन करणेहारे हैं । तात्पर्य यह । जो पुरुष जिस फलकी इच्छा करिकै जिस कर्मका अनुष्ठान करे है । तिस पुरुषकूं सो कर्म तिसी फलकी प्राप्ति करे है । तिस तिस फलकी कामनातैं विना कोईभी कर्म तिस तिस फलकी प्राप्ति करै नहीं । यातैं अन्वयव्यतिरेककरिकै या पुरुषकी कामनाही फलकी प्राप्तिविषे कारण है । यातैं हे अर्जुन तूं निस्त्रैगुण्य होउ । क्या स्वर्गादिक फलकी कामनातैं रहित होउ । ता फलकी कामनातैं रहित तुमारेकूं संसारकी प्राप्ति होवैगी नहीं । इतनै कहणेकरिकै निष्काम पुरुषोंकूंभी अग्निहोत्रादिक कर्मोंके स्वभावतैंही स्वर्गादिक संसारकी प्राप्ति होवैगी ऐसी अर्जुनकी शंकाका खंडन करा इति । शंका । हे भगवन् शीत उष्णादिकोंकी निवृत्ति करणेवासतै वस्त्रादिक पदार्थोंकी अपेक्षा अवश्य संभवै है । ता अपेक्षाके विद्यमान हुए निष्कामता कैसे होवैगी । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए । श्रीभगवान् कहे हैं (निर्द्वं-

द्वः इति) इहां (निस्त्रैगुण्यो भव) या वचनविषे स्थित जो भव यह शब्द है। ता भवशब्दका उत्तरपदोंविषे सर्वत्र संबंध करणा। हे अर्जुन (मात्रास्पर्शास्तु) या श्लोकविषे पूर्व कथन करी जो युक्ति है। ता युक्तिकरिकै शीत उष्ण, सुख दुःख, मान अपमान, शत्रु मित्र इत्यादिक सर्व द्वंद्वधर्मोंतैं तूं रहित होउ। क्या तिन सर्व द्वंद्वधर्मोंके सहनस्वभाववाला तूं होउ इति। शंका। हे भगवन् नहीं सकारणे योग्य जो दुःख है। सो दुःख किस प्रकार सहारा जावैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं (नित्यसत्वस्थः इति) नित्य क्या अचल ऐसा जो धैर्यनामा सत्व है ता सत्वविषे जो स्थित होवै ताका नाम नित्यसत्वस्थ है। ऐसा नित्यसत्वस्थ तूं होउ। तात्पर्य यह । जिस पुरुषका सो सत्व, रज, तम दोनोंकरिकै तिरस्कारकूं प्राप्त होवै है। सो पुरुष शीतउष्णादिजन्य पीडाकरिकै मैं अबी मरौंगा या प्रकारका अपणेकूं मानता हुआ स्वधर्मतैं विमुख होवै है । तूं अर्जुन तौ ता रज, तम दोनोंका तिरस्कार करिकै केवल ता सत्वधर्मकूं आश्रयण कर इति। शंका। हे भगवन् शीतउष्णादिकोंके सहन किये हुएभी क्षुधा तृषाकी निवृत्ति करणेवासतै पूर्व नहीं प्राप्त हुए अन्नादिक पदार्थोंके प्राप्तिवासतै तथा पूर्व प्राप्त हुए अन्नादिक पदार्थोंके रक्षण करणेवासतै अवश्य प्रयत्न करणा होवैगा। ता प्रयत्नके विद्यमान हुए सो नित्य सत्वस्थपणा कैसे होवैगा। किंतु नहीं होवैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं (निर्योगक्षेमः इति) हे अर्जुन पूर्व अप्राप्त वस्तुकी जो प्राप्ति है ताका नाम योग है। और पूर्व प्राप्त वस्तुका जो रक्षण है ताका नाम क्षेम है। ता योग क्षेम दोनोंतैं तूं रहित होउ। क्या चित्तके विक्षेपका हेतु जो पदार्थोंका परिग्रह है ता परिग्रहतैं तूं रहित होउ। शंका। हे भगवन् ता योगक्षेमतैं जो मैं रहित होवौंगा। तौ मैं किस प्रकार जीवौंगा। किंतु हमारा जीवन नहीं होवैगा। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तूं अपणे जीवनकी चिंता मत कर। सर्वका अंतर्यामी परमेश्वरही तुमारे योगक्षेमादिकोंका निर्वाह करैगा या प्रकारका उत्तर कहे हैं। (आत्मवान् इति। आत्मा क्या परमात्मा ध्येयतारूपकरिकै तथा योगक्षेमादिकोंका निर्वाहकरतारूपकरिकै विद्यमान है जिस पुरुषका ताका नाम आत्मवान् है। ऐसा आत्मवान् तूं होउ। क्या सर्व कामनावोंका परित्याग करिकै परमेश्वरका आराधन करणेहारा जो मैं हूं तिस हमारे देहकी यात्रामात्रवासतै अपेक्षित जो अन्नवस्त्रादिक पदार्थ हैं तिन सर्व पदार्थोंकूं सो अंतर्यामी ईश्वरही संपादन करैगा या प्रकारका निश्चय करिकै तूं निश्चित होउ इति। अथवा आत्मवान् होउ क्या अप्रमत्त होउ इति ॥ ४५ ॥ ❀ ॥ शंका। हे भगवन् स्वर्गादिक फलविषयक सर्व कामनावोंका परित्याग करिकै कर्मोंकूं करता हुआ मैं अर्जुन तिस तिस कर्मकरिकै प्राप्त होणेयोग्य जो स्वर्गादिक आनंद हैं तिन सर्व आनंदोंतैं रहित होवौंगा । जिस कारणतैं कामनातैं विना तिन

स्वर्गादिक आनंदोंकी प्राप्ति होती नहीं। यह वार्त्ता पूर्व आप कथन करि आये हो । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ब्रह्मानंदके प्राप्त हुएतैं सर्व आनंद प्राप्त होवै हैं या प्रकारका उत्तर कहे हैं ।

(मू. श्लो.) यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके । तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ ४६ ॥ (पदच्छेदः) यावान् । अर्थः । उदपाने । सर्वतः । संप्लुतोदके । तावान् । सर्वेषु । वेदेषु । ब्राह्मणस्य । विजानतः ॥ ४६ ॥ (पदार्थः) हे अर्जुन जैसे अल्प जलवाले स्थानोंविषे जितना की स्नानपानादिरूप प्रयोजन सिद्ध होवै हैं सर्व ओरतें महान् जलवाले तलावविषे ते स्नानपानादिक सर्वही प्रयोजन सिद्ध होवै हैं तैसे सर्व वेदउक्त काम्यकर्मोंविषे जितने की हिरण्यगर्भके लोकपर्यंत आनंद प्राप्त होवै हैं तितने सर्व आनंद ब्रह्मसाक्षात्कारवान् ब्रह्मवेत्ता पुरुषकूं होवै हैं ॥ ४६ ॥

टीका । हे अर्जुन जैसे पर्वततैं निकसे हुए जो अनेक जलके झरणे हैं ते सर्व जलके झरणे किसी नीची भूमिविषे जाइकै एकठे होवै हैं । ताकी तलाव संज्ञा होवै है । तहां एक एक झरणेके जलतैं यथाक्रमतैं सिद्ध होणेहारे जो स्नान, पान, वस्त्रप्रक्षालन आदिक प्रयोजन हैं । ते स्नानपानादिक सर्व प्रयोजन तिन झरणोंके जलोंके समूहरूप महान् तलावविषे सिद्ध होवै हैं । काहेतैं तिन सर्व झरणोंके जलोंका तिस तलावविषेही अंतर्भाव है । तैसे वेदोंविषे कथन करे हुए जितनै की अग्निहोत्र, ज्योतिष्टोम, अश्वमेध आदिक काम्य कर्म हैं । तिन अग्निहोत्रादिक काम्य कर्मोंकरिकै इस सकाम पुरुषकूं क्रमतैं प्राप्त होणेहारे जो स्वर्गलोकतैं आदिलैके ब्रह्मलोकपर्यंत विषयजन्य आनंद हैं । ते सर्व आनंद इस ब्रह्मसाक्षात्कारवान् ब्रह्मवेत्ता पुरुषकूं एकही कालविषे प्राप्त होवै हैं । काहेतैं भूमिलोकतैं आदिलैके ब्रह्मलोकपर्यंत जितनै की विषयजन्य क्षुद्र आनंद हैं । ते सर्व आनंद ब्रह्मानंदके अंशरूप हैं । यातैं ते सर्व क्षुद्र आनंद ता ब्रह्मानंदके अंतर्भूतही हैं । तहां श्रुति । " एतस्यैवानंदस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवंति " । अर्थ यह । ब्रह्मातैं आदिलैके सर्व प्राणिमात्र इस ब्रह्मानंदके अंशमात्रकूं अंगीकारकरिकै आनंदपूर्वक जीवते हैं इति । यद्यपि एक अद्वितीय ब्रह्मानंदविषे अंशअंशीभाव संभवता नहीं । तथापि जैसे एकही आकाशविषे घटादिक उपाधियोंके वशतैं अंशअंशीभावव्यवहार होवै है । तैसे एकही ब्रह्मानंदविषे अविद्याकृत अंतःकरणादिक उपाधियोंके वशतैं अंशअंशीभावव्यवहार होवै है । वास्तवतैं सो अंशअंशीभाव है नहीं । यातैं यह अर्थ

सिद्ध भया। निष्काम कर्मोंकरिकै जबी तुमारा अंतःकरण शुद्ध होवैगा। तबी तुमारेकूं आत्मज्ञानकी प्राप्ति होवैगी। ता आत्मज्ञानकरिकै तुमारेकूं ब्रह्मानंदकी प्राप्ति होवैगी। ता ब्रह्मानंदविषेही हिरण्यगर्भादिक सर्व आनंदोंका अंतर्भाव है। यातैं ता ब्रह्मानंदकी प्राप्तिकरिकै तुमारेकूं तिन सर्व आनंदोंकी प्राप्ति होवैगी। यातैं तिन विषयजन्य क्षुद्र आनंदोंकी प्राप्तिवासतै तुमारेकूं तिन काम्य कर्मोंके करणेका कछु प्रयोजन नहीं है। यातैं ता ब्रह्मानंदकी प्राप्ति करणेहारे आत्मज्ञानकी प्राप्तिवासतै तूं निष्काम कर्मोंकूं कर इति॥ और किसी टीकाकारनैं तौ इस श्लोकके पदोंकी इस प्रकार योजना करिकै यह अर्थ करा है। (यावान्। अर्थः। उदपाने। सर्वतः। संप्लुतोदके। तावान्। सर्वेषु। वेदेषु। ब्राह्मणस्य। विजानतः इति) जैसे सर्व ओरतैं महान् जलवाले महान् तलावविषे इस पुरुषके स्नानपानादिक सर्व प्रयोजन एक घटमात्र जलकरिकैही सिद्ध होवै हैं। कोई ता महान् तलावके सर्व जलके खरच करणेतैं ते स्नानपानादिक सर्व प्रयोजन सिद्ध होवै नहीं। इस प्रकार शुद्ध चित्तवाले मुमुक्षु जनका सो सर्व प्रयोजन सर्व वेदोंविषे उपनिषद्रूप वेदके एकदेशके श्रवणमात्रकरिकैही सिद्ध होवै है। तिन मुमुक्षु जनोंकूं ता अपणे प्रयोजनकी सिद्धिवासतै कोई सर्व वेदोंके अर्थके अनुष्ठानकी अपेक्षा रहै नहीं। जिस कारणतैं एक जन्मकरिकै सर्व वेदोंके अर्थका अनुष्ठान करणा संभवता नहीं इति। या दोनों व्याख्यानोंविषे प्रथम व्याख्यान बहुत टीकाकारोंकूं संमत है। और यह दूसरा व्याख्यान किसी एक टीकाकारनैं करा है। परंतु ता प्रथम व्याख्यानविषे श्लोकके पूर्वार्धविषे ‘अनेकस्मिन् यथा तथा भवति’ या चारि पदोंका अध्याहार करणा होवै है। और श्लोकके उत्तरार्द्धविषे स्थित दार्ष्टांतिक भागविषे पूर्वार्धतैं यावान् तावान् या दोनों पदोंका अनुषंग करणा होवै है। सो पदोंका अध्याहार तथा अनुषंग इस दूसरे व्याख्यानविषे करणा होवै नहीं। तहां पूर्व अश्रुत पदका जो वाक्यविषे संबंध करणा है याका नाम अध्याहार है। और पूर्व वाक्यविषे स्थित पदका उत्तरवाक्यविषे संबंध करणा याका नाम अनुषंग है इति॥ ४६ ॥ ❀ ॥ शंका। हे भगवन् ते निष्काम कर्म स्वतंत्र होइकै तौ ता ब्रह्मानंदकी प्राप्ति करते नहीं। किंतु अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा आत्मज्ञानका संपादन करिकैही ते निष्काम कर्म ता ब्रह्मानंदनकी प्राप्ति करे हैं। यातैं जिस आत्मज्ञानकरिकै साक्षातही ब्रह्मानंदकी प्राप्ति होवै है। सो आत्मज्ञानही हमारेकूं प्रथम संपादन करणे योग्य है। ता आत्मज्ञानकूं छोडिकै बहुत प्रयत्न करिकै सिद्ध होणेहारे तथा बहिरंग साधनरूप ऐसे निष्काम कर्मोंके करणेका कछु प्रयोजन नहीं है। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् अबी तुमारेकूं तिन निष्काम कर्मोंविषेही अधिकार है या प्रकारका उत्तर कहे हैं।

(मू. श्लो.) कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन । मा कर्मफलहेतुर्भूर्माते संगोस्त्वकर्मणि ॥ ४७ ॥ (पदच्छेदः) कर्मणि । एव अधिकारः । ते । मा । फलेषु । कदाचन । मा । कर्मफलहेतुः । भूः । मा । ते । संगः । अस्तु । अकर्मणि ॥ ४७ ॥ (पदार्थः) हे अर्जुन तुमारा कर्मविषेही अधिकार होवो कर्मके फलोंविषे कदाचित्‌भी तुमारा अधिकार मत होवो तूं कर्मोंके फलका उत्पादक मत होउ तथा कर्मके नहीं करणेविषे तुमारी प्रीति मत होवै ॥ ४७ ॥

टीका । हे अर्जुन आत्मज्ञानकी उत्पत्तिके अयोग्य अशुद्ध अंतःकरणवाला जो तूं हैं । तिस तुमारेकूं अबी अंतःकरणकी शुद्धि करणेहारे निष्काम कर्मोंविषेही अधिकार होवो । क्या हमारेकूं अबी यह निष्काम कर्मही करणेयोग्य हैं या प्रकारका बोध होवो । ज्ञाननिष्ठारूप वेदांतवाक्योंके विचारविषे सो कर्त्तव्यताका बोध अबी तुमारेकूं मत होवो । इस प्रकार कर्मोंके करणेहारे तुमारेकूं तिन कर्मोंके स्वर्गादिक फलोंविषे तिन कर्मोंके अनुष्ठानतैं पूर्वकालविषे तथा तिन कर्मोंके अनुष्ठानके उत्तरकालविषे तथा तिन कर्मोंके अनुष्ठानकालविषे कदाचित्‌भी अधिकार मत होवै । क्या इन कर्मोंके स्वर्गादिक फल हमनैं भोगणे हैं या प्रकारका बोध कदाचित्‌भी तुमारेकूं मत होवै । शंका । हे भगवन् हमनैं इस कर्मके स्वर्गादिक फलकूं भोगणा है या प्रकारकी बुद्धिके अभाव हुएभी ते कर्म अपणे सामर्थ्यतैंही स्वर्गादिक फलोंकी प्राप्ति करैंगे ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् फलकी कामनातैं विना ते कर्म ता फलकी प्राप्ति नहीं करे हैं या प्रकारका उत्तर कहे हैं (मा कर्मफलहेतुर्भूः इति) हे अर्जुन फलकी कामनाकरिकै तिन कर्मोंकूं करता हुआ यह पुरुष तिन फलोंका उत्पादक होवै है । और तूं अर्जुन तौ ता फलकी कामनातैं रहित होइकै ता कर्मके फलका उत्पादक मत होउ । जिस कारणतैं निष्काम पुरुषोंनैं भगवत् अर्पणबुद्धिकरिकै करे हुए कर्म स्वर्गादिक फलकी प्राप्ति करते नहीं । यह वार्त्ता पूर्व कथन करी आये हैं इति । शंका । हे भगवन् जो कदाचित् ते कर्म अपणे सामर्थ्यतैं फलकी प्राप्ति नहीं करते होवैं । तौ ऐसे निष्फल कर्मोंके करणेकाही क्या प्रयोजन है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं (मा ते संगोस्त्वकर्मणि इति) जो कदाचित् स्वर्गादिक फलके प्राप्तिकी इच्छा नहीं होवै तौ दुःखरूप कर्मोंके करणेकाही क्या प्रयोजन है या प्रकारकी तिन कर्मोंके न करणेविषे तुमारी प्रीति मत होवै इति ॥ ४७ ॥ ❁ ॥ अब इस पूर्व कथन करे हुए अर्थकाही विस्तारतैं निरूपण करे हैं ।

(मू. श्लो.) योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय । सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥ ४८ ॥ (पदच्छेदः) योगस्थः । कुरु । कर्माणि । संगं । त्यक्त्वा । धनंजय । सिद्ध्यसिद्ध्योः । समः । भूत्वा । समत्वं । योगः । उच्यते ॥ ४८ ॥

(पदार्थः) हे अर्जुन तूं योगविषे स्थित हुआ फलकी इच्छाकूं परित्याग करिकै तथा फलकी प्राप्ति अप्राप्ति दोनोंविषे हर्षविषादतैं रहित होइकै कर्मोंकूं कर सो हर्षविषादतैं रहितपणाही योग कह्या जावे है ॥ ४८ ॥

टीका । हे अर्जुन तूं योगविषे स्थित होइकै स्वर्गादिक फलकी इच्छारूप संगका परित्याग करिकै तथा मैं इस कर्मका कर्त्ता हूं या प्रकारके कर्तृत्व अभिनिवेशका परित्याग करिकै कर्मोंकूं कर । अब ता संगके त्यागका उपाय कथन करे हैं (सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा इति) हे अर्जुन तिन वेदउक्त कर्मोंके स्वर्गादिक फलकी प्राप्तिविषे तूं हर्षका परित्याग करिकै तथा तिन स्वर्गादिक फलोंकी अप्राप्तिविषे विषादका परित्याग करिकै केवल ईश्वरआराधनबुद्धिकरिकै तिन कर्मोंकूं कर । शंका । हे भगवन् पूर्व आपनैं योगशब्दकरिकै कर्मोंका कथन करा था । और अबी आपनैं योगविषे स्थित होइकै तूं कर्मोंकूं कर या प्रकारका वचन कह्या है । यातैं आपके पूर्वउत्तर वचनोंका अभिप्राय मैं जानि सकता नहीं । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् उत्तर कहे हैं (समत्वं योग उच्यते) हे अर्जुन कर्मोंके फलकी प्राप्तिविषे तथा कर्मोंके फलकी अप्राप्तिविषे जो हर्षविषादतैं रहितपणारूप समत्व है । सो समत्वही इहां (योगस्थः कुरु कर्माणि) या वचनविषे स्थित योगशब्दकरिकै कथन करा है । ता योगशब्दकरिकै कोई कर्मोंका कथन करा नहीं । यातैं पूर्वउत्तर वचनोंका विरोध होवे नहीं इति । तहां पूर्व (सुखदुःखे समे कृत्वा) या श्लोकविषे जय अजय दोनोंकी समता करिकै केवल युद्धमात्रकी कर्त्तव्यता कथन करी थी । जिस कारणतैं पूर्वप्रसंगविषे युद्धकीही कर्त्तव्यता प्राप्त थी । और इहां तौ दृष्टअदृष्टरूप सर्व फलोंका परित्याग करिकै अपणे वर्णआश्रमके सर्व कर्मोंकी कर्त्तव्यता कथन करी है । यातैं पूर्वउत्तर वचनोंविषे पुनरुक्तिदोषकी प्राप्ति होवै नहीं इति ॥ ४८ ॥ ❁ ॥ शंका । हे भगवन् क्या केवल कर्मोंका अनुष्ठानही पुरुषार्थरूप है । जिस कारणतैं सर्वकालविषे निष्काम कर्मोंकूंही पुरुषनैं करणा या प्रकारका उपदेश वारंवार आपनैं करीता है । किंवा । "प्रयोजनमनुद्दिश्य मंदोपि न प्रवर्तते" । अर्थ यह । किंचित् फलरूप प्रयोजनकूं न उद्देशकरिकै मूढ पुरुषभी किसी कार्यविषे प्रवृत्त होवै नहीं इति । इस लोकप्रसिद्ध न्यायतैंभी तिन निष्काम कर्मोंविषे प्रवृत्ति संभवै नहीं ।

यातैं फलकी कामनातैं विना निष्फल कर्मोंके करणेतैं फलकी कामनाकरिकै कर्मोंका अनुष्ठान करणाही श्रेष्ठ है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्री-भगवान् उत्तर कहे हैं ।

(मू. श्लो.) दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय । बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥ ४९ ॥ (पदच्छेदः) दूरेण । हि । अवरं । कर्म । बुद्धियोगात् । धनंजय । बुद्धौ । शरणं । अन्विच्छ । कृपणाः । फलहेतवः ॥ ४९ ॥ (पदार्थः) हे अर्जुन जिस कारणतैं निष्काम कर्मतैं सो सकाम कर्म अत्यंत दूरताकरिकै अधम है तिस कारणतैं परमात्मबुद्धिनिमित्त निष्काम कर्मयोगके करणेकूं तूं इच्छा कर जे पुरुष फलकी कामनावाले हैं ते पुरुष कृपण हैं ॥ ४९ ॥

टीका । हे अर्जुन जिस कारणतैं आत्मज्ञानरूप बुद्धिका साधनरूप जो निष्काम कर्मयोग है ताका नाम बुद्धियोग है । ता बुद्धियोगतैं सो जन्ममरणका हेतुरूप सकाम कर्म अत्यंत दूरताकरिकै अधम है । अथवा परमात्माविषयक जो बुद्धिरूप योग है ताका नाम बुद्धियोग है । ता बुद्धियोगतैं यह संपूर्ण कर्म अधम है । तिस कारणतैं सर्व अनर्थोंकी निवृत्ति करणेहारी जो परमात्माविषयक बुद्धि है । ता बुद्धिकी प्रातिवासतै प्रतिबंधक पापकर्मोंकी निवृत्तिद्वारा जो निष्काम कर्मयोग है ताके करणेकी तूं इच्छा कर इति । हे अर्जुन स्वर्गादिक फलकी कामनावाले जे पुरुष तिन सकाम कर्मोंकूं करे हैं । ते पुरुष कृपण हैं । क्या ते सकाम पुरुष सर्वदा जन्ममरणादिरूप घटीयंत्रके भ्रमणकरिकै नाना प्रकारकी दीन दशावोंकूं प्राप्त होवै हैं । तहां श्रुति । " यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणः " । अर्थ यह । हे गार्गि इस भारतखंडविषे अधिकारी मनुष्यशरीरकूं पाइकै जो पुरुष इस अक्षर परमात्मादेवकूं न जानिकरिकै इस मनुष्यलोकतैं जावै है । सो पुरुष कृपणही जानणा इति । हे अर्जुन ऐसे अधिकारी मनुष्यशरीरकूं पाइकै तूंभी ऐसा कृपण मत होउ । किंतु जन्ममरणादिक सर्व अनर्थोंकी निवृत्ति करणेहारा जो आत्मज्ञान है । ता आत्मज्ञानकूं अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा उत्पन्न करणेहारा जो निष्कामकर्मरूप योग है । ता निष्काम कर्मयोगकूंही तूं कर । इहां (कृपणाः) या पदके कहणेकरिकै श्रीभगवान्नैं अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन करा । जैसे इस लोकविषे कोईक कृपण पुरुष अनेक प्रकारके दुःखोंकूं सहन करिकै तथा नानाप्रकारके छल कपटकरिकै धनकूं एकठा करे हैं । ते कृपण पुरुष इस लोकके यत्किंचित् विषयजन्य सुखके लोभकरिकै ता धनका दान करते नहीं । या कार-

णतैं ते कृपण पुरुष ता धनके दानादिकोंकरिकै जन्य महान् सुखकूं अनुभव करि सकते नहीं । किंतु ता धनके एकठे करणेविषे करे जो पापकर्म हैं । तिन पापकर्मोंके नरकादिक दुःखोंकूंही ते कृपण पुरुष अनुभव करे हैं । यातैं ते कृपण पुरुष अपणी हानि आपही करे हैं । तैसे यह सकाम पुरुषभी महान् दुःखोंकूं सहन करिकै तिन कर्मोंकूं करे हैं । परंतु स्वर्ग, धन, पुत्र, पशु इत्यादिक अल्प फलोंके लोभकरिकै ते सकाम पुरुष तिन कर्मोंकरिकै मोक्षरूप परमानंदकूं प्राप्त होवै नहीं। किंतु अनेक दुःखोंकरिकै मिले हुए तिन स्वर्गादिक तुच्छ फलोंकूंही प्राप्त होवै हैं । या कारणतैं ते सकाम पुरुष अपणी हानि आपही करे हैं । ऐसे सकास पुरुषोंकी दौर्भाग्यताका तथा मूढताका बुद्धिमान् पुरुषोंकूं बहुत शोक होवै है । यह सर्व अर्थ श्रीभगवान्नैं कृपणपदकरिकै सूचन करा इति ॥ ४९ ॥ ॥ इस प्रकार ता बुद्धियोगके अभाव हुए दोषका निरूपण करा । अब ता बुद्धियोगके विद्यमान हुए गुणका निरूपण करे हैं ।

(मू. श्लो.) बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते । तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलं ॥ ५० ॥ (पदच्छेदः) बुद्धियुक्तः । जहाति । इह । उभे । सुकृतदुष्कृते । तस्मात् । योगाय । युज्यस्व । योगः । कर्मसु । कौशलं ॥ ५० ॥ (पदार्थः) हे अर्जुन जिस कारणतैं इन कर्मोंविषे समत्वबुद्धियुक्त पुरुष पुण्य पाप दोनोंकूं परित्याग करे है तिस कारणतैं ता समत्वबुद्धिरूप योगके वासते तूं उद्यमवाला होउ जिस कारणतैं सो योगही तिन कर्मोंविषे कुशलपणा है ॥ ५० ॥

टीका । हे अर्जुन शास्त्रनैं विधान करे जो अग्निहोत्रादिक कर्म हैं । तिन कर्मोंके फलकी प्राप्तिविषे तथा फलकी अप्राप्तिविषे हर्षविषादतैं रहिततारूप समत्वबुद्धिकरिकै युक्त जो अधिकारी पुरुष है । सो अधिकारी पुरुष जिस कारणतैं पुण्यपाप दोनोंकूं अंतःकरणकी शुद्धि ज्ञानकी प्राप्तिद्वारा परित्याग करे है । तिस कारणतैं ता समत्वबुद्धिरूप योगकी प्राप्तिवासतै तूं दृढ उद्यमवाला होउ । जिस कारणतैं सो समत्वबुद्धिरूप योगही तिन कर्मोंविषे प्रवर्त्तमान पुरुषका कुशलपणा है । तात्पर्य यह । वास्तवतैं बंधके हेतुरूप जो कर्म हैं । तिन कर्मोंकाभी जो समत्वबुद्धिरूप योग मोक्षविषे उपयोग सिद्ध करे है । यहही ता समत्वबुद्धिरूप योगविषे महान् कुशलता है इति । इतनै कहणेकरिकै भगवाननैं अर्जुनके प्रति यह अर्थ सूचन करा । समत्वबुद्धिकरिकै युक्त जो कर्मयोग है । सो कर्मयोग आप कर्मरूप हुआभी अपणे सजातीय दुष्ट कर्मोंका नाश करे है । यातैं सो कर्मयोग महान् कुशल

है । और तूं अर्जुन तौ चेतनरूप हुआभी अपणे सजातीय दुर्योधनादिक दुष्टोंका नाश करता नहीं । यातैं तूं कुशल नहीं हैं इति । अथवा इस श्लोकका यह दूसरा अर्थ करणा । बुद्धियुक्तः । जहाति । इह । उभे । सुकृतदुष्कृते । तस्मात् योगाय । युज्यस्व । योगः । कर्मसु । कौशलं इति । इनै समत्वबुद्धियुक्त कर्मोंके कीये हुए अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा परमात्मसाक्षात्कारकरिकै युक्त हुआ यह पुरुष जिस कारणतैं पुण्यपाप दोनोंकूं परित्याग करे है तिस कारणतैं तूं समत्वबुद्धियुक्त कर्मयोगकी प्राप्तिवासतै उद्यमवाला होउ जिस कारणतैं सर्व कर्मोंके मध्यविषे सो समत्वबुद्धियुक्त कर्मयोग दुष्ट कर्मोंके निवृत्त करणेविषे बहुत चतुर है इति ॥ ५० ॥ ❁ ॥ शंका । हे भगवन् इस अधिकारी पुरुषकूं पापकर्मकी निवृत्ति तौ अपेक्षित है । परंतु पुण्यकर्मोंकी निवृत्ति अपेक्षित है नहीं । जो पुण्यकर्मोकीभी निवृत्ति होवैगी । तौ पुरुषार्थकीही हानि होवैगी । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् स्वर्गादिक तुच्छ फलके त्याग कियेतैं परम पुरुषार्थकी प्राप्तिरूप फलका कथन करे हैं ।

(मू. श्लो.) कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ॥ जन्मबंधविनिर्मुक्ताः पदं गच्छंत्यनामयं ॥ ५१ ॥ (पदच्छेदः) कर्मजं । बुद्धियुक्ताः । हि । फलं । त्यक्त्वा । मनीषिणः । जन्मबंधविनिर्मुक्ताः । पदं । गच्छंति । अनामयं ॥ ५१ ॥ (पदार्थः) हे अर्जुन जिस कारणतैं ते समत्वबुद्धियुक्त पुरुष कर्मजन्य फलकूं त्यागिकरिकै आत्मसाक्षात्कारवाले होवै हैं तथा जन्मरूप बंधतैं रहित हुए अविद्यादिक रोगोंतैं रहित मोक्षरूप पदकूं प्राप्त होवै हैं तिस कारणतैं तूंभी ऐसा होउ ॥ ५१ ॥

टीका । हे अर्जुन ता समत्वबुद्धिवाले पुरुष अग्निहोत्रादिक कर्मोंकरिकै जन्य स्वर्गादिरूप फलकूं परित्याग करिकै केवल ईश्वरके आराधनवासतै तिन कर्मोंकूं करते हुए अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा तत्त्वमसि आदिक वाक्यजन्य आत्माकारबुद्धिरूप मनीषावाले होवै हैं । इस प्रकार आत्मज्ञानरूप मनीषाकूं प्राप्त होइकै ते अधिकारी पुरुष जन्मरूप बंधतैं अत्यंत मुक्त हुए कार्यसहित अविद्यारूप रोगतैं रहित तथा सर्व भयतैं रहित जो परम आनंदस्वरूप ब्रह्मरूप मोक्ष है ता मोक्षरूप पुरुषार्थकूं अभेदकरिकै प्राप्त होवै हैं इति । इहां श्रीभगवान्का यह अभिप्राय है । जिस कारणतैं फलकी कामनाका परित्याग करिकै ता समत्वबुद्धिकरिकै अपणे वर्णआश्रमके कर्मोंका अनुष्ठान करणेहारे पुरुष तिंन निष्काम कर्मोंके प्रभावतैं शुद्ध अंतःकरणवाले होवै हैं । ता अंतःकरणकी शुद्धितैं अनंतर ते अधिकारी पुरुष तत्त्वमसि आदिक प्रमाणोंतैं उत्पन्न हुए आत्मज्ञानके प्रभावतैं कार्यसहित अविद्यातैं रहित हुए सर्व अनर्थकी

निवृत्तिपूर्वक परमानंदकी प्राप्तिरूप मोक्षकूं प्राप्त होवै हैं। जिस मोक्षकूं शास्त्रविषे विष्णुका परमपदरूपकरिकै कथन करा है। तिस कारणतैं तूं अर्जुनभी (यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे) इस पूर्व उक्त वचनतैं मोक्षरूप श्रेयकी इच्छावाला प्रतीत होता है। यातैं तुंभी ता मोक्षकी प्राप्तिवासतै इस प्रकारके निष्काम कर्मयोगकूं कर इति ॥ ५१ ॥ ❀ ॥ शंका ॥ हे भगवन् इस प्रकार निष्कामकर्मोंके अनुष्ठान करते हुए किस कालविषे हमारे अंतःकरणकी शुद्धि होवैगी। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ताकेविषे कालके नियमका अभाव कथन करे हैं।

(मू. श्लो.) यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति। तदा गंतासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥ ५२ ॥ (पदच्छेदः) यदा। ते। मोहकलिलं। बुद्धिः। व्यतितरिष्यति। तदा। गंता। असि। निर्वेदं। श्रोतव्यस्य। श्रुतस्य। च ॥ ५२ ॥ (पदार्थः) हे अर्जुन जिस कालविषे तुमारा अंतःकरण अविवेकरूप कालुष्यकूं परित्याग करैगा तिस कालविषे श्रवण करणेयोग्य कर्मफलके तथा श्रवण करे हुए कर्मफलके वैराग्यकूं प्राप्तिवाला तूं होवैगा ॥ ५२ ॥

टीका। हे अर्जुन तिन निष्काम कर्मोंके करते हुए इतनै कालतैं पीछे अंतःकरणकी शुद्धि होवै है या प्रकारके कालका नियम इहां नहीं है। किंतु तिन निष्काम कर्मोंके करते हुए जिस कालविषे तुमारा अंतःकरण यह मैं हूं यह मेरे हैं इत्यादिक अहंममअभिमानरूप अविवेकरूप कालुष्यकूं परित्याग करैगा क्या रजोगुण तमोगुणरूप मलकूं परित्याग करिकै केवल शुद्ध सत्त्वभावकूं प्राप्त होवैगा। तिस कालविषे अबी श्रवण करणेयोग्य अग्निहोत्रादिक कर्मोंके स्वर्गादिक फलोंके वैराग्यकूं तथा पूर्व श्रवण करे हुए कर्मोंके स्वर्गादिक फलोंके वैराग्यकूं तूं प्राप्त होवैगा। क्या तिन स्वर्गादिक फलोंकूं मिथ्यारूप जानिकै तिनोंके प्राप्तिकी तृष्णातैं तूं रहित होवैगा। तहां श्रुति। "परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायात्"। अर्थ यह। ब्रह्मके प्राप्तिकी इच्छावान् अधिकारी पुरुष कर्मोंकरिकै रचित स्वर्गादिक लोकोंकूं अनित्य दुःखरूप जानिकै तिनोंतैं वैराग्यकूं प्राप्त होवै है इति। इहां भगवान्का यह तात्पर्य है। अशुद्ध अंतःकरणविषे वैराग्य होवै नहीं। किंतु शुद्ध अंतःकरणविषेही सो वैराग्य होवै है। यातैं जिस कालविषे तुमारेकूं इस लोकके विषयसुखोंविषे तथा स्वर्गादिक लोकोंके विषयसुखोंविषे दोषदृष्टिपूर्वक तीव्र वैराग्यकी प्राप्ति होवै। तिसी कालविषे ता वैराग्यरूप फलकरिकै तुमनैं अपणे अंतःकरणकी शुद्धि जानणी। जबपर्यंत तिन विषयोंतैं वैराग्य नहीं भया। तबपर्यंत तुमनैं अपणे

॥५४॥

अंतःकरणकूं मलिनही जानणा इति ॥ ५२ ॥ ❀ ॥ शंका । हे भगवन् तिन निष्काम कर्मोंके अनुष्ठानतैं अंतःकरणकी शुद्धिकरिकै उत्पन्न हुआ है वैराग्य जिसकूं ऐसा जो कोईक अधिकारी पुरुष है । तिस अधिकारी पुरुषकूं किस कालविषे आत्मज्ञानकी प्राप्ति होवै है । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं ।

(मू. श्लो.) श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला । समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥ ५३ ॥ (पदच्छेदः) श्रुतिविप्रतिपन्ना । ते । यदा । स्थास्यति । निश्चला । समाधौ । अचला । बुद्धिः । तदा । योगं । अवाप्स्यसि ॥५३॥ (पदार्थः) हे अर्जुन पूर्व नाना फलोंके श्रवण करिकै संशयकूं प्राप्त हुई तुमारी बुद्धि जिस कालविषे परमात्मादेवविषे निश्चल हुई तथा अचल हुई स्थित होवैगी तिस कालविषे तूं जीवब्रह्मके अभेदज्ञानकूं प्राप्त होवैगा ॥ ५३ ॥

टीका । हे अर्जुन नहीं विचार करा है वास्तव तात्पर्य जिनोंका ऐसे जो स्वर्गादिक नाना प्रकारके फलोंके श्रवण हैं । तिन श्रवणोंकरिकै प्राप्त हुए जो नाना प्रकारके संशयविपरीतभावना हैं । तिन संशयविपरीतभावनावोंकरिकै पूर्व विक्षेपकूं प्राप्त हुई जो तुमारी बुद्धि है सा तुमारी बुद्धि जिस कालविषे अंतःकरणकी शुद्धितैं प्राप्त हुए विवेकजन्य पदार्थोंविषे दोषदर्शन करिकै ता विक्षेपका परित्याग करिकै अंतरपरमात्मादेवविषे निश्चल हुई क्या जाग्रत स्वप्नदर्शनरूप विक्षेपतैं रहित हुई । तथा ता परमात्मादेवविषे अचल हुई क्या सुषुप्ति, मूर्च्छा, स्तब्धभाव इत्यादिक लयरूप चलनतैं रहित हुई स्थित होवैगी क्या लयविक्षेपरूप दोनोंका परित्याग करिकै जबी ता परमात्मादेवविषे एकाग्रभावकूं प्राप्त होवैगी । अथवा । (निश्चला अचला) या दोनों पदोंका यह अर्थ करणा (निश्चला) क्या असंभावना विपरीतभावनातैं रहित हुई । तथा (अचला) क्या दीर्घकाल, आदर, निरंतर, सत्कार इन चारोंके सेवन करिकै विजातीय वृत्तियोंकरिकै नहीं दूषित हुई ऐसी सा बुद्धि जिस कालविषे वायुतैं रहित दीपककी न्याई ता परमात्मादेवविषे स्थित होवैगी । तिसी कालविषे तत्त्वमसि आदिक वाक्योंतैं जन्य जीवब्रह्मके अभेदसाक्षात्काररूप योगकूं तूं प्राप्त होवैगा । तिस ज्ञानकालविषे दूसरा कोई कर्त्तव्य है नहीं । यातैं तिस कालविषे तूं कृतकृत्य होवैगा । तथा स्थितप्रज्ञ होवैगा इति ॥ ५३ ॥ ❀ ॥ तहां इस प्रकारके अवसरकूं प्राप्त होइकै सो अर्जुन जीवन्मुक्त पुरुषके जे लक्षण हैं तेही लक्षण मुमुक्षु जनोंके मोक्षका उपायरूप हैं या प्रकार मानता हुआ ता स्थितप्रज्ञके लक्षणके जानणेवासतै या प्रकारका प्रश्न करे है ।

(मू. श्लो.) अर्जुन उवाच ॥ स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव । स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किं ॥ ५४ ॥
(पदच्छेदः) स्थितप्रज्ञस्य । का । भाषा । समाधिस्थस्य । केशव । स्थितधीः । किं । प्रभाषेत । किं । आसीत । व्रजेत । किं
॥ ५४ ॥ (पदार्थः) हे केशव समाधिविषे स्थित स्थितप्रज्ञ पुरुषका लक्षण क्या है तथा समाधितैं उठ्या हुआ सो स्थितप्रज्ञ किस
प्रकार भाषण करे है तथा किस प्रकार बाह्य इंद्रियोंका निग्रह करे है तथा किस प्रकार विषयोंकूं प्राप्त होवै है ॥ ५४ ॥

टीका । निश्चल हुई है मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारकी प्रज्ञा जिसकी ताका नाम स्थितप्रज्ञ है । सो स्थितप्रज्ञ पुरुष दो प्रकारकी अवस्थावाला होवै है । एक तौ समाधिविषे स्थित होवै है । और दूसरा ता समाधितैं उत्थान हुए चित्तवाला होवै है । या कारणतैंही ता स्थितप्रज्ञ पुरुषका समाधिस्थ यह विशेषण कथन करा है । ऐसे समाधिविषे स्थित स्थितप्रज्ञ पुरुषका कौन लक्षण है । क्या सो समाधिविषे स्थित स्थितप्रज्ञ पुरुष किस लक्षणकरिकै दूसरे पुरुषोंनैं जानीता है । इति प्रथम प्रश्नः ॥ १ ॥ और ता समाधितैं व्युत्थानकूं प्राप्त हुआ है चित्त जिसका ऐसी दूसरी अवस्थावाला सो स्थितप्रज्ञ पुरुष अपणी स्तुतिविषे तथा निंदाविषे हर्षपूर्वक तथा द्वेषपूर्वक वचनकूं किस प्रकार कथन करे है । इति द्वितीय प्रश्नः ॥ २ ॥ और ता समाधितैं उत्थानकूं प्राप्त हुए चित्तके निग्रह करणेवासतै सो स्थितप्रज्ञ पुरुष नेत्रादिक बाह्य इंद्रियोंके निग्रहकूं किस प्रकार करे है । इति तृतीय प्रश्नः ॥ ३ ॥ और तिन बाह्य इंद्रियोंके निग्रहके अभावकालविषे सो स्थितप्रज्ञ पुरुष किस प्रकार विषयोंकूं प्राप्त होवै है । इति चतुर्थ प्रश्नः ॥ ४ ॥ तात्पर्य यह । ता व्युत्थानचित्तवाले स्थितप्रज्ञ पुरुषके भाषण, आसन, व्रजन यह तीनों अज्ञानी पुरुषोंके भाषणादिकोंतैं किस प्रकारके विलक्षण हैं इति । इस प्रकार अर्जुनके चारि प्रश्न सिद्ध होवै हैं । तहां समाधिविषे स्थित स्थितप्रज्ञविषे तौ प्रथम एक प्रश्न है । और समाधितैं उत्थानचित्तवाले स्थितप्रज्ञविषे तीन प्रश्न हैं । तहां (हे केशव) या संबोधनके कहणेकरिकै अर्जुननैं यह अर्थ सूचन करा । सर्वका अंतर्यामी होणेतैं आपही इस रहस्य अर्थके कहणेविषे समर्थ हो इति ॥ ५४ ॥ ❀ ॥ अब श्रीभगवान् इन चारि प्रश्नोंके यथाक्रमतैं उत्तरोंकूं इस द्वितीय अध्यायकी समाप्तिपर्यंत कथन करे हैं । तहां एक श्लोककरिकै प्रथम प्रश्नका उत्तर कहे हैं ।

(मू. श्लो.) श्रीभगवानुवाच ॥ प्रजहाति यदा कामान् सर्वान्पार्थ मनोगतान् । आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ५५ ॥

(पदच्छेदः) प्रजहाति । यदा । कामान् । सर्वान् । पार्थ । मनोगतान् । आत्मनि । एव । आत्मना । तुष्टः । स्थितप्रज्ञः । तदा । उच्यते ॥ ५५ ॥ (पदार्थः) हे अर्जुन जिस कालविषे सो समाधिस्थ पुरुष अपणे मनविषे स्थित सर्व कामोंकूं परित्याग करे है तथा आत्माविषे आत्माकरिकै ही तृप्त होवै है तिस कालविषे सो समाधिस्थ पुरुष स्थितप्रज्ञ कह्या जावै है ॥ ५५ ॥

टीका । हे अर्जुन कामसंकल्प आदिक जो मनकी वृत्तियां विशेष हैं । जिन कामसंकल्पादिक वृत्तियोंकूं अन्य शास्त्रविषे प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति या भेदकरिकै पंच प्रकारका कथन करा है । तिन कामसंकल्पादिक सर्व वृत्तियोंकूं जिस कालविषे यह विद्वान् पुरुष कारणके बाधकरिकै परित्याग करे है । क्या जिस कालविषे तिन कामसंकल्पादिक सर्व वृत्तियोंतैं रहित होवै है । तिस कालविषे सो समाधिस्थ विद्वान् पुरुष स्थितप्रज्ञ कह्या जावै है । अब तिन कामसंकल्पादिकोंविषे अनात्मवस्तुकी धर्मरूपता कथन करिकै परित्याग करणेकी योग्यता निरूपण करे हैं (मनोगतान् इति) हे अर्जुन ते कामसंकल्पादिक सर्व धर्म मनकेही हैं । आत्माके धर्म हैं नहीं । जो कदाचित् ते कामसंकल्पादिक आत्माकेही स्वाभाविक धर्म होवैं । तौ जैसे अग्निका स्वाभाविक धर्म जो उष्णता है । सो उष्णताधर्म अग्निके विद्यमान हुए कदाचित्भी निवृत्त होवै नहीं । तैसे आत्माके विद्यमान हुए ते कामसंकल्पादिक धर्म कदाचित्भी निवृत्त होवैंगे नहीं । यातैं ते कामसंकल्पादिक आत्माके धर्म नहीं हैं । किंतु मनकेही धर्म हैं । यातैं ता कारणरूप मनके परित्यागकरिकै ते कामसंकल्पादिक धर्म परित्याग करणेकूं शक्य हैं । ते कामसंकल्पादिक मनकेही धर्म हैं । या अर्थविषे " कामः संकल्पो विचिकित्सा " इत्यादिक श्रुतिही प्रमाणरूप हैं । इतनै कहणेकरिकै बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म इन अष्टोंकूं आत्माका धर्म मानणेहारे नैयायिकोंका मतभी खंडन करा इति । शंका । हे भगवन् ता समाधिस्थ स्थितप्रज्ञ विद्वान्का मुख प्रसन्न हुआ प्रतीत होवै है । और सा मुखकी प्रसन्नता अंतरके संतोषतैं विना होवै नहीं । यातैं ता मुखकी प्रसन्नतारूप हेतुतैं ता स्थितप्रज्ञ पुरुषका संतोषविषे अनुमान करा जावै है । सो संतोषविशेष सर्व वृत्तियोंके परित्याग किये हुए किस प्रकार संभवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं । (आत्मान्येवात्मनातुष्टः इति) हे अर्जुन सो विद्वान् पुरुष परमानंदस्वरूप आत्माविषेही परमपुरुषार्थकी प्राप्तितैं तृप्तिकूं प्राप्त हुआ है । कोई अनात्मतुच्छ पदार्थोंविषे सो विद्वान् पुरुष तृप्तिकूं प्राप्त हुआ नहीं । ता परमानंदस्वरूपआत्माविषेभी स्वप्रकाशचैतन्यरूपकरिकै भासमान आत्माकरिकैही तृप्तिकूं प्राप्त हुआ है । कोई मनकी वृत्तिविशेषकरिकै तृप्तिकूं प्राप्त हुआ नहीं । यातैं ता स्थितप्रज्ञ पुरुषविषे मनकी वृत्तितैंविनाभी सो संतोषविशेष

॥५६॥ संभव होइ सकै है । तहां श्रुति । " यदा सर्वे प्रमुच्यंते कामायेस्य हृदि श्रिताः अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते " । अर्थ यह । इस पुरुषके मनविषे स्थित जे कामसंकल्पादिक हैं । ते सर्व कामसंकल्पादिक जिस कालविषे निःशेषतैं निवृत्त होवै हैं । तिस कालविषे यह जीव अमृतभावकूं प्राप्त होवै है । तथा इसी शरीरविषे आनंदस्वरूप ब्रह्मकूं अनुभव करे है इति । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । सो समाधिविषे स्थित स्थितप्रज्ञ पुरुष इस प्रकारके लक्षणवाचक शब्दोंकरिकै कथन करा जावै है यह प्रथम प्रश्नका उत्तर सिद्ध हुआ इति ॥ ५५ ॥ ❀ ॥ अब समाधितैं उत्थानकूं प्राप्त हुए स्थितप्रज्ञके भाषण, आसन, गमन या तीनोंविषे मूढ पुरुषोंके भाषणादिकोंतैं विलक्षणताकूं कथन करता हुआ श्रीभगवान् (किं प्रभाषेत) या द्वितीय प्रश्नके उत्तरकूं दो श्लोकोंकरिकै कथन करे हैं ।

(मू. श्लो.) दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः । वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ५६ ॥ (पदच्छेदः) दुःखेषु । अनुद्विग्नमनाः । सुखेषु । विगतस्पृहः । वीतरागभयक्रोधः । स्थितधीः । मुनिः । उच्यते ॥ ५६ ॥ (पदार्थः) हे अर्जुन दुःखोंविषे नहीं उद्वेगकूं प्राप्त हुआ है मन जिसका तथा विषयसुखोंविषे निवृत्त हुई है स्पृहा जिसकी तथा निवृत्त हुए हैं रागभयक्रोध जिसके ऐसा मननशील पुरुष स्थितप्रज्ञ कह्या जावै है ॥ ५६ ॥

टीका । आध्यात्मिक दुःख आधिभौतिक दुःख, आधिदैविक दुःख, यह तीन प्रकारके दुःख होवै हैं । तहां शोकमोहादिक आधियोंकरिकै जन्य जो दुःख हैं तथा ज्वरशूलादिक व्याधियोंकरिकै जन्य जो दुःख हैं तिन दुःखोंकूं आध्यात्मिक दुःख कहे हैं । और व्याघ्रसर्पादिकोंकरिकै जन्य जो दुःख हैं तिन दुःखोंकूं आधिभौतिक दुःख कहे हैं । और अति वायु अति वृष्टि अग्नि आदिकोंकरिकै जन्य जो दुःख हैं तिन दुःखोंकूं आधिदैविक दुःख कहे हैं । ते सर्व दुःख रजोगुणका परिणामरूप तथा संतापरूप अंतःकरणकी वृत्तिविशेषरूप होवै हैं । तथा पापकर्मरूप प्रारब्धकरिकै प्राप्त होवै हैं । ऐसे दुःखोंके प्राप्तिविषे तिन दुखोंके निवृत्त करणेकी असामर्थ्यताकरिकै नहीं प्राप्त हुआ है उद्वेगकूं मन जिसका ताका नाम अनुद्विग्नमना है । और जे अविवेकी पुरुष हैं । तिन अविवेकी पुरुषोंकूं तौ ता दुःखकी प्राप्तिकालविषे या प्रकारका उद्वेग होवै है । मैं बहुत पापात्मा हूं ऐसे दारुण दुःखोंकूं भोगणेहारे मैं दुरात्माकूं धिक्कार है । ऐसे मेरे दुःखकूं कौन निवृत्त करैगा इति । इस प्रकारकी अनुतापरूप जो भ्रांति ॥५६॥

है ता भ्रांतिरूप जो तमोगुणका परिणामरूप अंतःकरणकी वृत्तिविशेष है ताका नाम उद्वेग है । सो उद्वेग तिन अविवेकी पुरुषोंकूं दुःखरूप फलकी प्राप्तिकालविषे जैसे होवै है । तैसे जो कदाचित् सो उद्वेग तिन अविवेकी पुरुषोंकूं पापकर्मोंके करणकालविषे होता । तौ तिन पापकर्मोंके प्रवृत्तिका प्रतिबंधक होणेतैं सो उद्वेग सफल होता । परंतु तिन पापकर्मोंके करणकालविषे तिन अविवेकी पुरुषोंकूं सो उद्वेग होता नहीं । और तिन पापकर्मोंके दुःखरूप फलके भोगकालविषे उत्पन्न हुआभी सो उद्वेग जैसे गृहकूं अग्निके लागे हुए ता अग्निके शांति करणेवासतै कूपका खोदणा निष्फल होवै है । तैसे निष्फलही होवै है । काहेतैं तिन पापरूप कारणके विद्यमान हुए सो दुःखरूप कार्य अवश्यकरिकै उत्पन्न होवै है । ता कालविषे उद्वेगमात्रकरिकै ता दुःखकी निवृत्ति होइ सकै नहीं । और ता दुःखके पापरूप कारणके विद्यमान हुएभी हमारेकूं किसवासतै दुःख उत्पन्न होवै है । या प्रकारका जो अविवेक है सो अविवेक भ्रमरूप है । यातैं सो भ्रमरूप अविवेक ता स्थितप्रज्ञ पुरुषविषे संभवता नहीं । और ता विद्वान् पुरुषका शरीरभी पुण्यपापकर्मोंकरिकै रचित है । यातैं ते प्रारब्ध पापकर्म ता विद्वान् पुरुषकूं केवल दुःखमात्रकीही प्राप्ति करे हैं । परंतु ता दुःखकी प्राप्तिके उत्तरकालविषे ता अविवेकरूप भ्रमकी प्राप्ति करै नहीं । शंका । हे भगवन् दुःखकी प्राप्तितैं उत्तरकालविषे उत्पन्न भया जो अविवेकरूप भ्रम है । सो अविवेकरूप भ्रमभी दूसरे दुःखका कारण होवै है । यातैं सो अविवेकरूप भ्रमभी दूसरे प्रारब्धकर्मोंकरिकैही प्राप्त होवै है । यातैं विद्वान् पुरुषकूंभी ता प्रारब्धकर्मके वशतैं सो अविवेकरूप भ्रम अवश्य होवैगा । समाधान । हे अर्जुन ता भ्रमका उपादानकारण जो अज्ञान है। सो अज्ञान ता स्थितप्रज्ञ पुरुषका नाश होइ गया है । यातैं ता स्थितप्रज्ञ पुरुषविषे सो अविवेकरूप भ्रम संभवता नहीं । तथा ता विद्वान् पुरुषविषे ता भ्रमजन्य दुःखकी प्राप्ति करणेहारे प्रारब्धकर्मभी हैं नहीं । और जिसी किसी प्रकारतैं ता विद्वान् पुरुषके देहकी यात्रामात्रका निर्वाह करणेहारा जो प्रारब्धकर्मोंका फल है । ता फलका भोग भ्रमके अभाव हुएभी बाधितानुवृत्तिकरिकै ता विद्वान् पुरुषविषे संभव होइ सकै है । यह वार्त्ता आगे विस्तारकरिकै कथन करैंगे इति । किंवा सो विद्वान् पुरुष जैसे दुःखोंकी प्राप्तिविषे उद्वेगतैं रहित होवै है । तैसे सुखोंकी प्राप्तिविषे स्पृहातैंभी रहित होवै है । तहां सत्वगुणका परिणामरूप जो अंतःकरणकी प्रीतिरूप वृत्तिविशेष है । ताका नाम सुख है । सो सुखभी दुःखकी न्यांई आध्यात्मिक सुख, आधिभौतिक सुख, आधिदैविक सुख, या भेदकरिकै तीन प्रकारका होवै है । तहां प्रिय वस्तुके ध्यानकरिकै तथा पांडित्यादिकोंके अभिमानकरिकै जन्य जो सुख है ता सुखकूं आध्यात्मिक सुख कहे हैं । और स्त्री पुत्र मित्रादिकोंकरिकै जन्य जो सुख है ता सुखकूं आधिभौतिक सुख कहे हैं ।

और मंद मंद पवन, वृष्टि आदिकोंकरिकै जन्य जो सुख है ता सुखकूं आधिदैविक सुख कहे हैं । अथवा इसी गीताशास्त्रके अष्टादशाध्यायविषे कथन करी रीतिसैं सात्विक, राजस, तामस या भेदतैं सो सुख तीन प्रकारका होवै है । अथवा अन्य शास्त्र उक्त रीतिसैं वैषयिक, आभिमानिक, मानोरथिक, आभ्यासिक या भेदकरिकै सो सुख चारि प्रकारका होवै है । तहां विषयके संबंधतैं जो सुख उत्पन्न होवै है ताकूं वैषयिक सुख कहे हैं ॥ और राज्यपांडित्यादिकोंके अभिमानकरिकै जो सुख उत्पन्न होवै है ताकूं आभिमानिक सुख कहे हैं ॥ और प्रिय विषयोंके ध्यान करणेतैं जो सुख उत्पन्न होवै है ताकूं मानोरथिक कहे हैं ॥ और सूर्यभगवान्के नमस्कारादिकोंकरिकै जो सुख उत्पन्न होवै है ताकूं आभ्यासिक सुख कहे हैं ॥ या प्रकार अनेक प्रकारके सुखोंके जनावणेवासतै श्रीभगवान्नैं (सुखेषु) यह बहुवचन कथन करा है। ते सर्व सुख पुण्यकर्मरूप प्रारब्धतैं प्राप्त होवै हैं । तिन सर्व सुखोंविषे सो विद्वान् पुरुष स्पृहातैं रहित होवै है । तहां तिस तिस सुखके अनुभवकालविषे तिस तिस सुखके सजातीय दूसरे सुखकी प्राप्ति करणेहारा जो धर्म है ता धर्मका नहीं अनुष्ठान करिकै तिस तिस सुखके प्राप्तिकी आकांक्षारूप जो तामसी अंतःकरणकी वृत्तिविशेष है ताका नाम स्पृहा है । सा स्पृहा भ्रांतिरूप है । ऐसी भ्रांतिरूप स्पृहा अविवेकी पुरुषोंविषेही उत्पन्न होवै है । विवेकी पुरुषोंविषे सा भ्रांतिरूप स्पृहा उत्पन्न होवै नहीं । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । जैसे पापकर्मरूप कारणके विद्यमान हुएभी दुःखरूप कार्य हमारेकूं मत प्राप्त होवै या प्रकारकी व्यर्थ आकांक्षारूप उद्वेग विवेकी पुरुषविषे संभवता नहीं । तैसे पुण्यकर्मरूप कारणके नहीं विद्यमान हुएभी सुखरूप कार्य हमारेकूं प्राप्त होवै या प्रकारकी व्यर्थ आकांक्षारूप जो स्पृहा है। जिस स्पृहाकूं तृष्णा कहे हैं सा तृष्णारूप स्पृहाभी ता विवेकी पुरुषविषे संभवै नहीं । और प्रारब्ध पुण्यकर्म तौ ता विद्वान् पुरुषकूं केवल सुखमात्रकीही प्राप्ति करे हैं । कोई ता भ्रांतिरूप स्पृहाकी प्राप्ति करै नहीं इति । अथवा । हर्षरूप जो अंतःकरणकी वृत्तिविशेष है ताका नाम स्पृहा है । तहां जिस हमारेकूं ऐसा उत्कृष्ट सुख प्राप्त भया है सो मैं धन्य धन्य हूं। तीन लोकोंविषे हमारेसमान सुखवाला कोईभी प्राणी नहीं है । किसीभी उपायकरिकै यह हमारा सुख नाशकूं नहीं प्राप्त होवै । इत्यादिरूप जो उत्फुल्लतारूप अंतःकरणकी तामसी वृत्तिविशेष है ताका नाम हर्ष है । सा हर्षरूप स्पृहाभी भ्रांतिरूपही है । यहही स्पृहाशब्दका अर्थ श्रीभगवान् (न प्रहृष्येत् प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियं) या श्लोकविषे आगे कथन करैंगे। सो हर्षरूप भ्रांतिभी ता विद्वान् पुरुषविषे संभवे नहीं । पुनः कैसा है सो विद्वान् पुरुष निवृत्त होइ गये हैं राग भय क्रोध जिसके । तहां यह विषय बहुत सुंदर है या प्रकारके शोभनबुद्धिरूप अध्यासकरिकै जन्य जो रंजनरूप अंतःकरणकी वृत्तिविशेष है जिसकूं अ-

त्यंत अभिनिवेश कहे हैं ताका नाम राग है। और ता रागका विषय जो पदार्थ है ता पदार्थके नाश करणेहारे किसी कारणके प्राप्त हुए ता कारणके निवृत्त करणेविषे अपणेकूं असमर्थ मानणेहारे पुरुषकी जो दीनतारूप अंतःकरणकी वृत्तिविशेष है ताका नाम भय है। और ता रागके विषयरूप प्रिय वस्तुके नाश करणेहारे किसी कारणके प्राप्त हुए ता कारणके निवृत्त करणेविषे अपणेकूं असमर्थ मानणेहारे पुरुषकी जो प्रज्वलनरूप अंतःकरणकी वृत्तिविशेष है ताका नाम क्रोध है। ते राग, भय, क्रोध तीनों भ्रमरूपही हैं। ऐसे भ्रमरूप राग, भय, क्रोध तीनों निवृत्त होइ गये हैं जिसतैं ताका नाम वीतरागभयक्रोध है। इस प्रकारका मननशील संन्यासी स्थितप्रज्ञ कह्या जावै है। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। इस प्रकारका स्थितप्रज्ञ पुरुष अपणे अंतर अनुभवकूं प्रगट करिकै अपणे शिष्योंके प्रति शिक्षा करणेवासतै उद्वेगतैं रहितपणेकूं तथा स्पृहातैं रहितपणेकूं तथा रागभयक्रोधतैं रहितपणेकूं कथन करणेहारे जो वचन हैं तिन वचनोंकूंही कथन करे है। क्या हमारे न्यांई दूसराभी मुमुक्षु दुःखोंविषे उद्वेग नहीं करै तथा सुखोंविषे स्पृहा नहीं करै तथा रागभयक्रोधतैं रहित होवै इति ॥ ५६ ॥ ❀ ॥ किंच ।

(मू.श्लो.) यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभं । नाभिनंदति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५७ ॥ (पदच्छेदः) यः । सर्वत्र । अनभिस्नेहः । तत् । तत् । प्राप्य । शुभाशुभं । न । अभिनंदति । न । द्वेष्टि । तस्य । प्रज्ञा । प्रतिष्ठिता ॥ ५७ ॥ (पदार्थः) हे अर्जुन जो विद्वान् पुरुष देहादिक सर्व पदार्थोंविषे स्नेहतैं रहित है तथा तिसें तिसें प्रिय अप्रिय विषयकूं प्राप्त होइके नहीं प्रशंसा करै है नहीं द्वेष करै है तिसें विद्वान् पुरुषकी प्रज्ञा स्थिर होवे है ॥ ५७ ॥

टीका। जो विद्वान् मुनि अपणे देहजीवनादिक सर्व पदार्थोंविषे अनभिस्नेह है। इहां जिसके विद्यमान हुए अन्य वस्तुकी हानि तथा वृद्धि अपणेविषे आरोपण करी जावै ऐसी जो ता अन्य वस्तुविषयक अंतःकरणकी तामसी वृत्तिविशेष है जिसकूं प्रेम कहे हैं। ताका नाम स्नेह है ता स्नेहके वशतैंही यह लोक अपणे स्त्री पुत्र धनादिक पदार्थोंकी हानिवृद्धिकूं अपणेविषे मानै हैं। ता स्नेहतैं सर्व प्रकारतैं जो रहित होवै ताका नाम अनभिस्नेह है। ऐसा अनभिस्नेह विद्वान् पुरुषभी परमानंदस्वरूप आत्मादेवविषे तौ सर्व प्रकारतैं स्नेहवाला होवै। काहेतैं देहादिक अनात्मपदार्थोंके स्नेहका जो परित्याग है सो अंतरआत्माके स्नेहवासतैंही है। आत्माके स्नेहतैं विना बाह्य पदार्थोंके स्नेहका परित्याग करणा निष्फल है इति। और जो विद्वान् पु-

रुष पुण्यकर्मरूप प्रारब्धनैं प्राप्त करे जो सुखके कारणरूप विषय हैं। तिन प्रिय विषयोंकूं प्राप्त होइकै हर्षविशेषपूर्वक तिन विषयोंकी प्रशंसा नहीं करे है। और पापकर्मरूप प्रारब्धनैं प्राप्त करे जो दुःखके कारणरूप विषय हैं तिन अप्रिय विषयोंकूं प्राप्त होइकै सो विद्वान् पुरुष असूयापूर्वक तिन अप्रिय विषयोंकी निंदा नहीं करे है। तात्पर्य यह। अज्ञानी पुरुषोंके सुखके हेतुरूप जो अपणे स्त्रीपुत्रादिक पदार्थ हैं ते पदार्थ तिन अज्ञानी पुरुषोंके प्रति शुभ विषय हैं। तिन शुभ विषयोंके गुण कथन करणेविषे प्रवृत्त करणेहारी जो तिन अज्ञानी पुरुषोंके अंतःकरणकी भ्रांतिरूप तामसी वृत्तिविशेष है ताका नाम अभिनंदन है। तहां तिन स्त्रीपुत्रादिक पदार्थोंके गुणोंका कथन अन्य पुरुषोंके प्रीतिवासतै है नहीं। यातैं व्यर्थही है। इस प्रकार अन्य पुरुषके जो विद्याप्रतिष्ठादिक गुण हैं। ते विद्यादिक गुण ईर्षाकी उत्पत्तिद्वारा तिन अज्ञानी पुरुषोंके दुःखकेही कारण हैं। यातैं ते अन्य पुरुषके विद्यादिक गुण तिन अज्ञानी पुरुषोंके प्रति अशुभ विषय हैं। तिन अशुभ विषयोंकी निंदादिकोंविषे प्रवृत्त करणेहारी जो तिस अज्ञानी पुरुषके अंतःकरणकी भ्रांतिरूप वृत्तिविशेष है ताका नाम द्वेष है। सो द्वेषभी तमोगुणकाही परिणाम है। और ता अज्ञानी पुरुषनैं करी जो निंदा है सा निंदा ता अन्य पुरुषके विद्यादिक उत्कृष्टताकूं निवारण करि सकै नहीं। यातैं सा निंदा व्यर्थही है। यातैं सो अभिनंदन तथा द्वेष दोनों भ्रांतिरूप हैं तथा तमोगुणका परिणाम हैं। ऐसा अभिनंदन तथा द्वेष दोनों ता भ्रांतितैं रहित तथा शुद्ध अंतःकरणवाले स्थितप्रज्ञ पुरुषविषे कैसे संभवैंगे। किंतु नहीं संभवैंगे। और ते द्वेषादिक तामसी वृत्तिही अंतःकरणकूं चलायमान करणेहारी हैं। तिन द्वेषादिकोंके अभाव हुए ता स्नेहतैं रहित तथा हर्ष-विषादतैं रहित विद्वान् मुनिकी सा आत्मतत्त्वविषयक प्रज्ञा प्रतिष्ठितही होवै है क्या मोक्षरूप फलविषे पर्यवसानवाली होवै है। सोइही मुनि स्थितप्रज्ञ कह्या जावै है। इस प्रकार दूसराभी मुमुक्षु सर्व पदार्थोंविषे स्नेहतैं रहित होवै। तथा प्रिय विषयोंकूं प्राप्त होइकै तिनोंकी प्रशंसा नहीं करै। तथा अप्रिय विषयोंकूं प्राप्त होइकै तिनोंकी निंदा नहीं करै। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। जैसे अज्ञानी पुरुष शुभ अशुभ पदार्थोंकी प्राप्तिकालविषे प्रशंसारूप वचनोंकूं तथा निंदारूप वचनोंकूं कथन करे है। तैसे सो विद्वान् पुरुष ता शुभ अशुभ पदार्थोंकी प्राप्तिकालविषे प्रशंसारूप वचनोंकूं तथा निंदारूप वचनोंकूं कथन करता नहीं। किंतु ता शुभ अशुभ दोनोंकी प्राप्तिविषे सो विद्वान् पुरुष उदासीनही रहे है इति ॥ ५७ ॥ ❀ ॥ अब (किमासीत) या तृतीय प्रश्नके उत्तरकूं श्रीभगवान् षट् श्लोकोंकरिकै कथन करे हैं। तहां प्रारब्धकर्मके वशतैं समाधितैं उत्थानकरिकै विक्षेपकूं

प्राप्त भये जो इंद्रिय हैं। तिन इंद्रियोंकूं पुनः अंतर्मुख करिकै समाधिवासतैही ता स्थितप्रज्ञ पुरुषकी स्थिति होवै है या अर्थके निरूपण करणेवासतै श्रीभगवान् कहे हैं।

(मू.श्लो.) यदा संहरते चायं कूर्मोंगानीव सर्वशः। इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५८ ॥ (पदच्छेदः) यदा। संहरते। च। अयं। कूर्मः। अंगानि। इव। सर्वशः। इंद्रियाणि। इंद्रियार्थेभ्यः। तस्य। प्रज्ञा। प्रतिष्ठिता ॥ ५८ ॥ (पदार्थः) हे अर्जुन जैसे कूर्म अपणे शिरपादादिक अंगोंकूं संकोच करे है तैसे यह विद्वान् पुरुष जिस कालविषे अपणे सर्व इंद्रियोंकूं शब्दादिक विषयोंतैं पुनः संकोच करे है तिस कालविषे तिस विद्वान् पुरुषकी प्रज्ञा स्थित होवै है ॥ ५८ ॥

टीका। हे अर्जुन जैसे कूर्म दूसरेके भयतैं अपणे शिरपादादिक सर्व अंगोंकूं अपणे शरीरविषेही संकोच करि लेवै है। तैसे समाधितैं उत्थानकूं प्राप्त हुआ यह विद्वान् पुरुष जिस कालविषे रागादिक दोषोंकी प्राप्तिके भयतैं तथा समाधिके विघ्नोंके भयतैं अपणे श्रोत्रादिक सर्व इंद्रियोंकूं शब्दादिक सर्व विषयोंतैं पुनः संकोच करि लेवै है। तिस कालविषे तिस विद्वान् पुरुषकी सा प्रज्ञा प्रतिष्ठित होवै है। तहां पूर्वले दो श्लोकोंकरिकै समाधितैं व्युत्थानदशाविषेभी ता विद्वान् पुरुषविषे सर्व तामस वृत्तियोंका अभाव कथन करा। और अबी इस श्लोककरिकै पुनः समाधिअवस्थाविषे तिन सकल वृत्तियोंका अभाव कथन करा है। इतनी पूर्वतैं इहां विलक्षणता है इति ॥ ५८ ॥ ❁ ॥ शंका ॥ हे भगवन् शब्दादिक विषयोंतैं जो श्रोत्रादिक इंद्रियोंकी निवृत्ति है। सा निवृत्ति जो कदाचित् स्थितप्रज्ञताका हेतु होवै तौ रोगादिक निमित्तके वशतैं मूढ पुरुषोंके श्रोत्रादिक इंद्रियोंकीभी शब्दादिक विषयोंतैं निवृत्ति देखणेविषे आवे है। यातैं ते रोगादिकोंवाले सर्व मूढ पुरुष स्थितप्रज्ञ होणे चाहीयें। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं।

(मू.श्लो.) विषया विनिवर्तंते निराहारस्य देहिनः। रसवर्जं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ ५९ ॥ (पदच्छेदः) विषयाः। विनिवर्तंते। निराहारस्य। देहिनः। रसवर्जं। रसः। अपि। अस्य। परं। दृष्ट्वा। निवर्तते ॥ ५९ ॥ (पदार्थः) हे अर्जुन इंद्रियोंकरिकै विषयोंके ग्रहण करणेविषे असमर्थ रोगी पुरुषके शब्दादिक विषय निवृत्त होइ जावे हैं परंतु तिन विषयोंका राग निवृत्त होवै नहीं और इस स्थितप्रज्ञ पुरुषका तौ परब्रह्मकूं साक्षात्कार करिकै सो राग भी निवृत्त होइ जावे है ॥ ५९ ॥

टीका। श्रोत्रादिक इंद्रियोंकरिकै शब्दादिक विषयोंके ग्रहण करणेविषे असमर्थ ऐसा जो देहाभिमानवाला रोगी मूढ पुरुष है । अथवा काष्ठकी न्यांई सर्व इंद्रियोंकी चेष्टातैं रहित जो तपस्वी है । तिन रोगी आदिक मूढ पुरुषोंकेभी ते शब्दादिक विषय निवृत्त होइ जावै हैं । परंतु तिन अज्ञानी पुरुषोंका तिन शब्दादिक विषयोंका राग निवृत्त होवै नहीं । किंतु सो विषयोंका राग तिस कालविषेभी तिन अज्ञानी पुरुषोंकूं बन्या रहे है। और इस स्थितप्रज्ञ विद्वान् पुरुषका तौ परमानंदस्वरूप ब्रह्म मैं हूं या प्रकारके साक्षात्कारकरिकै ते शब्दादिक विषय तथा तिन विषयोंका राग दोनों निवृत्त होइ जावै हैं। यह वार्त्ता (यावानर्थ उदपाने) या श्लोकविषे पूर्व कथन करि आये हैं । यातैं रागसहित विषयोंकी निवृत्तिही ता स्थितप्रज्ञका लक्षण है । ता लक्षणकी रोगादिग्रस्त मूढ पुरुषविषे अतिव्याप्ति होवै नहीं। यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। जिस कारणतैं परमात्मादेवके यथार्थ साक्षात्कारतैं विना रागसहित विषयोंकी निवृत्ति होवै नहीं । तिस कारणतैं यह अधिकारी पुरुष तिन रागसहित विषयोंके निवृत्त करणेहारी यथार्थज्ञानरूप जो प्रज्ञा है ता प्रज्ञाकी स्थिरताकूं अवश्यकरिकै संपादन करै इति ॥ ५९ ॥ ❀ ॥ तहां तिस प्रज्ञाकी स्थिरताविषे बाह्य इंद्रियोंका निग्रह तथा अंतर मनका निग्रह यह दोनों असाधारण कारण हैं । तिन दोनोंके अभाव हुए ता प्रज्ञाका नाश देखणेविषे आवै है । इस अर्थके कहणेवासतै प्रथम बाह्य इंद्रियोंके नहीं निग्रह करणेविषे दोषका वर्णन करे हैं ।

(मू॰श्लो॰) यततो ह्यपि कौंतेय पुरुषस्य विपश्चितः । इंद्रियाणि प्रमाथीनि हरंति प्रसभं मनः ॥ ६० ॥ (पदच्छेदः) यततः । हि । अपि । कौंतेय । पुरुषस्य । विपश्चितः । इंद्रियाणि । प्रमाथीनि । हरंति । प्रसभं । मनः ॥ ६० ॥ (पदार्थः) हे कुंतीके पुत्र अर्जुन यत्न करणेहारे विवेकी पुरुषके मनकूं भी यह अत्यंत बलवान् श्रोत्रादिक इंद्रिय बलात्कारतैं विकारकूं प्राप्त करे हैं ॥ ६० ॥

टीका। हे अर्जुन वारंवार शब्दादिक विषयोंविषे दोषदर्शनरूप यत्नकूं करणेहारा जो अत्यंत विवेकी पुरुष है । ता विवेकी पुरुषके क्षणमात्र निर्विकार कीये हुए मनकूंभी यह श्रोत्रादिक इंद्रिय नाना प्रकारके विकारोंकी प्राप्ति करे हैं । शंका । हे भगवन् ता विकारका विरोधी जो विवेक है ता विवेकके विद्यमान हुए तिस विवेकी पुरुषके मनकूं ते इंद्रिय विकारकी प्राप्ति नहीं करि सकैंगे । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन इंद्रियोंका प्रभाव कथन करे हैं (प्रमाथीनि इति) हे अर्जुन यह श्रोत्रादिक इंद्रिय अत्यंत बलवान् हैं । यातैं यह इंद्रिय ता विवेकके पराभव करणेविषे स-

मर्थ हैं । यातैं ता विचारवान् पुरुषरूप स्वामीके देखते हुए तथा ता विवेकरूप रक्षकके विद्यमान हुएभी तिन सर्वोंका पराभव करिकै यह श्रोत्रादिक इंद्रिय ता विवेकजन्य प्रज्ञाविषे प्राप्त हुए मनकूं ता प्रज्ञातैं निवृत्त करिकै अपणे शब्दादिक विषयोंविषेही बलात्कारतैं प्राप्त करे हैं । इहां (यततो हि) या वचनविषे स्थित जोहि यह शब्द है ताहि शब्दकरिकै भगवान्नैं यह लोकप्रसिद्धि बोधन करी । यह वार्ता लोकविषेभी प्रसिद्ध है । जैसे कोई बलवान् शत्रु धनी पुरुषोंकूं तथा ता धनके रक्षक पुरुषोंकूं तिरस्कार करिकै तिनोंके देखते हुएही बलात्कारसैं तिनोंके धनादिक पदार्थ ले जावै है । तैसे यह श्रोत्रादिक इंद्रियभी शब्दादिक विषयोंके समीपताकूं प्राप्त होइकै तिन विवेकादिकोंका पराभव करिकै बलात्कारसैं मनकूं तिन विषयोंविषे ले जावै हैं इति ॥ ६० ॥ ❀ ॥ शंका । हे भगवन् ते श्रोत्रादिक इंद्रिय जो ऐसे बलवान् हैं । तौ तिन इंद्रियोंका निरोध हमारेसैं कैसे होइ सकैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् तिन इंद्रियोंके निरोधका उपाय कथन करे हैं ।

(मू. श्लो.) तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः । वशे हि यस्येंद्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६१ ॥ (पदच्छेदः) तानि । सर्वाणि । संयम्य । युक्तः । आसीत । मत्परः । वशे । हि । यस्य । इंद्रियाणि । तस्य । प्रज्ञा । प्रतिष्ठिता ॥ ६१ ॥ (पदार्थः) हे अर्जुन हमारा अन्य भक्त तिने सर्व इंद्रियोंकूं वशिकरिकै निग्रहीतमनवाला हुआ स्थित होवे जिस पुरुषके यह इंद्रिय वशिवर्त्ति हैं तिस पुरुषकी सो प्रज्ञा स्थिर होवै है ॥ ६१ ॥

टीका । ज्ञानके साधनरूप जो श्रोत्रादिक पंच ज्ञानइंद्रिय हैं । तथा क्रियाके साधनरूप जो वागादिक पंच कर्मइंद्रिय हैं । तिन सर्व इंद्रियोंकूं अपणे वशि करिकै क्या शब्दादिक विषयोंतैं तिन इंद्रियोंका निरोध करिकै यह विवेकी पुरुष मनके निग्रहवाला हुआ स्थित होवै क्या बाह्य अंतर सर्व व्यापारोंतैं रहित हुआ स्थित होवै । शंका । हे भगवन् पूर्व आपनैं तिन इंद्रियोंकूं महान् बलवान् कह्या था । ऐसे बलवान् इंद्रियोंकूं अपणे वशि करणा कैसे संभवैगा । ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् कहे हैं (मत्परः इति) हे अर्जुन सर्व प्राणीमात्रका आत्मारूप जो मैं वासुदेव हूं । सो मैं वासुदेवही सर्वतैं उत्कृष्ट हूं जिस पुरुषकूं ता पुरुषका नाम मत्पर है । ऐसा मेरा अनन्य भक्तही तिन इंद्रियोंकूं अपणे वशि करे है । तहां श्लोक । " न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् " । अर्थ यह । सर्व प्राणीमात्रका आत्मारूप जो वासुदेव है । ता वासुदेवके अनन्य भक्तोंकूं कि-

सीभी कार्यविषे अशुभकी प्राप्ति होवै नहीं । किंतु सर्व कार्य ताके निर्विघ्न समाप्त होवै हैं इति । यह वार्त्ता लोकविषेभी प्रसिद्ध है । जैसे इस पुरुषनैं जबपर्यंत किसी बलवान् महाराजाका आश्रय नहीं लीया है । तबपर्यंतही तिस पुरुषकूं अन्य शत्रु दुःखकी प्राप्ति करे हैं । और यह पुरुष जबी ता बलवान् महाराजाके आश्रयकूं प्राप्त होवै है । तबी यह पुरुष अबी महाराजाके आश्रयकूं प्राप्त भया है या प्रकार मानिकरिकै ते शत्रु आपही तिस पुरुषके वशि होइ जावै हैं । तैसे यह अधिकारी पुरुषभी जबपर्यंत सर्वांतर्यामी ईश्वरके शरणकूं प्राप्त नहीं भया है । तबपर्यंतही यह श्रोत्रादिक इंद्रिय ता अधिकारी पुरुषकूं बहिर्मुख करे हैं । और यह अधिकारी पुरुष जबी ता अंतर्यामी ईश्वरके शरणकूं प्राप्त होवै है । तबी यह अधिकारी पुरुष अबी अंतर्यामी ईश्वरके शरणकूं प्राप्त भया है या प्रकार मानिकरिकै ते इंद्रिय आपही ता अधिकारी पुरुषके वशिभावकूं प्राप्त होवै हैं । यह सर्व अर्थ (वशे हि) या वचनविषे स्थित हि या शब्दकरिकै भगवान्नैं सूचन करा । ऐसे भगवद्भक्तिके महान् प्रभावकूं आगे विस्तार करिकै निरूपण करैंगे । अब श्रीभगवान् तिन इंद्रियोंके वशि करनेका फल कथन करे हैं । (वशे हि इति) हे अर्जुन जिस विद्वान् पुरुषके ते श्रोत्रादिक इंद्रिय वशि होवै हैं । तिसी विद्वान् पुरुषकी सा शास्त्रजन्य प्रज्ञा स्थिरताकूं प्राप्त होवै है । यातैं (किमासीत) या तृतीय प्रश्नका यह उत्तर सिद्ध भया । सो विद्वान् पुरुष श्रोत्रादिक सर्व इंद्रियोंकूं अपणे वशि करिकै स्थित होवै है इति ॥ ६१ ॥ ❀ ॥ शंका । हे भगवन् मनविषे जो अनर्थकी कारणता है सो बाह्य इंद्रियोंकी प्रवृत्तिद्वाराही है । स्वभावतैं मनविषे अनर्थकी कारणता है नहीं । यातैं जिस पुरुषनैं श्रोत्रादिक बाह्य इंद्रियोंका निग्रह करा है तिस पुरुषकूं दांतोंतैं रहित करे हुए सर्पकी न्यांई मनके नहीं निग्रह किये हुएभी किसी अनर्थकी प्राप्ति होवै नहीं । किंतु बाह्य प्रवृत्तिके अभावकरिकैही सो पुरुष कृतकृत्य होवै है । यातैं पूर्व श्लोकविषे (युक्त आसीत) या वचनकरिकै आपनैं कथन करा जो मनका निग्रह है सो व्यर्थही कथन करा है ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् सर्व इंद्रियोंके निग्रहवान् पुरुषकूंभी मनके नहीं निग्रह किये हुए सर्व अनर्थोंकी प्राप्ति दो श्लोकोंकरिकै कथन करे हैं ।

(मू. श्लो.) ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते । संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोभिजायते ॥ ६२ ॥ क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः । स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥६३॥ (पदच्छेदः) ध्यायतः । विषयान् । पुंसः । सं-

[५]गः । [४]तेषु । [६]उपजायते । [७]संगात् । [१०]संजायते । [८]कामः । [९]कामात् । [११]क्रोधः । [१२]अभिजायते ॥ ६२ ॥ [१३]क्रोधात् । [१५]भवति । [१४]संमोहः ।
[१६]संमोहात् । [१७]स्मृतिविभ्रमः । [१८]स्मृतिभ्रंशात् । [१९]बुद्धिनाशः । [२०]बुद्धिनाशात् ॥ [२१]प्रणश्यति ॥ ६३ ॥ (पदार्थः) हे अर्जुन [१]शब्दादिक
विषयोंकूं [२]मनकरिकै ध्यान करते हुए [३]पुरुषका [४]तिन विषयोंविषे [५]संग [६]उत्पन्न होवै है ता [७]संगतैं [८]काम [९]उत्पन्न होवै है [१०]ता काम-
तैं [११]क्रोध [१२]उत्पन्न होवै है ॥ ६२ ॥ [१३]ता क्रोधतैं [१४]संमोह [१५]होवै है [१६]ता संमोहतैं [१७]स्मृतिका विभ्रंश होवै है ता [१८]स्मृतिके भ्रंशतैं बुद्धि-
[१९]का नाश होवै है [२०]ता बुद्धिके नाशतैं [२१]नाशकूं प्राप्त होवै है ॥ ६३ ॥

टीका । हे अर्जुन जो पुरुष अपणे श्रोत्रादिक बाह्य इंद्रियोंकूं शब्दादिक विषयोंतैं निरोध करिकैभी मनकरिकै वारंवार तिन शब्दादिक विषयोंका चिंतन करे है । तिस पुरुषका तिन विषयोंविषे अवश्यकरिकै संग उत्पन्न होवै है । इहां यह विषय हमारे सुखके साधन हैं या प्रकारका शोभनअध्यासरूप जो प्रीतिविशेष है ताका नाम संग है। और ता सुखसाधनताज्ञानरूप संगतैं तिस पुरुषका तिन विषयोंविषे काम उत्पन्न होवै है। इहां यह विषय हमारेकूं कब प्राप्त होवैगा या प्रकारकी तृष्णाविशेषका नाम काम है । और किसी अन्य पुरुषकरिकै हननकूं प्राप्त हुआ जो सो तृष्णारूप काम है । तिस कामतैं ता हनन करणेहारे अन्य पुरुषविषयक अभिज्वलनरूप क्रोध उत्पन्न होवै है । और ता अभिज्वलनरूप क्रोधतैं कार्यअकार्यके विवेकका अभावरूप संमोह उत्पन्न होवै है । और ता संमोहतैं गुरुशास्त्रकरिकै उपदिष्ट अर्थका अनुसंधानरूप स्मृतिका विभ्रंश होवै है । और ता स्मृतिके विभ्रंशतैं अद्वितीय आत्माकार मनकी वृत्तिरूप बुद्धिका नाश होवै है । तात्पर्य यह । विपरीतभावनाकी वृद्धिरूप दोषकरिकै प्रतिबंध होणेतैं ता बुद्धिकी उत्पत्तिही नहीं होवै है । तथा उत्पन्न हुई ता बुद्धिका फलकी प्राप्ति करणेविषे अयोग्यताकरिकै विलय होइ जावै है । यहही ता बुद्धिका नाश है इति । और ता बुद्धिके नाशतैं सो पुरुष नाशकूं प्राप्त होवै है क्या सर्व पुरुषार्थके अयोग्य होवै है । काहेतैं इस लोकविषेभी जो पुरुष पुरुषार्थके अयोग्य होवै है । सो पुरुष यह मरा हुआ है या प्रकारके लोकोंके व्यवहारका विषय होवै है । तैसे सर्व पुरुषार्थके अयोग्य हुआ यह पुरुष मृत हुआही जानणा । यातैं यह अर्थ सिद्ध भया । जो पुरुष मनके निग्रहकूं न करिकै केवल बाह्य इंद्रियोंकाही निग्रह करे है । तिस पुरुषकूंभी जबी महान् अनर्थकी प्राप्ति होवै है । तबी मन इंद्रिय दोनोंके निग्रहतैं रहित पुरुषकूं महान् अनर्थकी प्राप्ति होवै है याकेविषे क्या कहणा

है । यातैं यह अधिकारी पुरुष महान् प्रयत्नकरिकैभी ता मनका निग्रह करै । ता मनके निग्रहतैं विना केवल बाह्य इंद्रियोंके निग्रहमात्रकरिकै सा स्थितप्रज्ञता प्राप्त होवै नहीं इति ॥ ६३ ॥ ॥ तहां पूर्व श्लोकविषे बाह्य इंद्रियोंके निग्रह किये हुएभी मनके नहीं निग्रह किये हुए दोषकी प्राप्ति कथन करी । अब मनके निग्रह किये हुए बाह्य इंद्रियोंके नहीं निग्रह हुएभी ता दोषकी प्राप्ति होवै नहीं या अर्थकूं कथन करता हुआ श्रीभगवान् (किं व्रजेत) या चतुर्थ प्रश्नके उत्तरकूं अष्ट श्लोकोंकरिकै कथन करे हैं ।

(मू·श्लो·) रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिंद्रियैश्चरन् । आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥ ६४ ॥ (पदच्छेदः) रागद्वेषवियुक्तैः । तु । विषयान् । इंद्रियैः । चरन् । आत्मवश्यैः । विधेयात्मा । प्रसादं । अधिगच्छति ॥ ६४ ॥ (पदार्थः) हे अर्जुन मनके निग्रहवाला पुरुष तौ रागद्वेषतैं रहित तथा मनके अधीन ऐसें इंद्रियोंकरिकै विषयोंकूं ग्रहण करता हुआभी चित्तके स्वच्छताकूंही प्राप्त होवै है ॥ ६४ ॥

टीका । जिस पुरुषनैं मनका निग्रह नहीं करा है । सो पुरुष बाह्य श्रोत्रादिक इंद्रियोंका निग्रह करिकैभी रागद्वेषयुक्त मनकरिकै शब्दादिक विषयोंका चिंतन करता हुआ जैसे पुरुषार्थतैं भ्रष्ट होवै है । तैसे मनके निग्रहवाला पुरुष ता पुरुषार्थतैं भ्रष्ट होवै नहीं । या प्रकारकी विलक्षणता बोधन करणे वासतै श्रीभगवान्नैं (रागद्वेषवियुक्तैस्तु) या वचनविषे स्थित तु यह शब्द कथन करा है । हे अर्जुन जिस पुरुषनैं अपणे मनका निग्रह करा है । सो पुरुष तौ ता वशीकृत मनके अधीन वर्तणेहारे तथा रागद्वेषतैं रहित ऐसे श्रोत्रादिक इंदियोंकरिकै शास्त्रविहित शब्दादिक विषयोंकूं ग्रहण करता हुआभी प्रसादकूंही प्राप्त होवै है। इहां परमात्माके साक्षात्कारकी योग्यतारूप जो चित्तकी स्वच्छता है ताका नाम प्रसाद है । जे इंद्रिय रागद्वेषकरिकै युक्त होवै हैं । ते इंद्रियही दोषके कारण होवै हैं । और यह विद्वान् पुरुष जबी मनकूं अपणे वशि करे है । तबी रागद्वेष दोनों निवृत्त होइ जावै हैं । और तिस रागद्वेषके अभाव हुए ता रागद्वेषके अधीन इंद्रियोंकी प्रवृत्ति होवै नहीं । और प्रारब्धकर्मोंके विद्यमान हुए तिन शब्दादिक विषयोंकी प्रतीति निवृत्त करी जावै नहीं । यातैं शास्त्रविहित शब्दादिक विषयोंकी प्रतीति मात्र ता विद्वान् पुरुषकूं दोषकी प्राप्ति करै नहीं । इतनै कहणेकरिकै या शंकाकीभी निवृत्ति करी । तिन शब्दादिक विषयोंका स्मरणमात्रभी जबी अनर्थका कारण है तबी तिन शब्दादिक विषयोंका

भोग तौ महान् अनर्थका कारण होवैगा । यातैं अपणे प्राणोंकी रक्षा करणे वासतै तिन शब्दादिक विषयोंकूं भोगता हुआ सो विद्वान् पुरुष ता अनर्थकूं क्युं नहीं प्राप्त होवैगा । किंतु सो विद्वान् पुरुषभी अवश्यकरिकै अनर्थकूं प्राप्त होवैगा इति । शंका । यातैं (किं व्रजेत) या चतुर्थ प्रश्नका यह उत्तर सिद्ध भया । रागद्वेषतैं रहित तथा अपणे वशवर्ति ऐसे श्रोत्रादिक इंद्रियोंकरिकै सो विद्वान् पुरुष शास्त्रविहित शब्दादिक विषयोंकूं प्राप्त होवै है इति ॥ ६४ ॥ ❀ ॥ तहां पूर्व श्लोकविषे सो मनके निग्रहवाला पुरुष प्रसादकूं प्राप्त होवै है । यह वार्ता कथन करी । तहां ता चित्तकी स्वच्छतारूप प्रसादके प्राप्त हुए कौन फल प्राप्त होवै है ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता प्रसादके फलका कथन करे हैं ।

(मू. श्लो.) प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते । प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥ ६५ ॥ (पदच्छेदः) प्रसादे । सर्वदुःखानां । हानिः । अस्य । उपजायते । प्रसन्नचेतसः । हि । आशु । बुद्धिः । पर्यवतिष्ठते ॥ ६५ ॥ (पदार्थः) हे अर्जुन ता प्रसादके प्राप्त हुए इस विद्वान् संन्यासीके सर्व दुःखोंका नाश होवै है जिस कारणतैं ता स्वच्छचित्तवाले संन्यासीकी बुद्धि शीघ्रही स्थिर होवै है ॥ ६५ ॥

टीका । ता चित्तकी स्वच्छतारूप प्रसादके प्राप्त हुए इस विद्वान् संन्यासीके अज्ञानजन्य आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक सर्व दुःखोंका नाश होवै है । जिस कारणतैं ता स्वच्छचित्तवाले संन्यासीकी ब्रह्म आत्मा या दोनोंके अभेदकूं विषय करणेहारी बुद्धि शीघ्रही स्थिर होवै है । काहेतैं असंभावना तथा विपरीतभावना यह दोनोंही ता बुद्धिकी स्थिरताविषे प्रतिबंधक होवै हैं । ते असंभावना विपरीतभावना दोनों ता विद्वान् पुरुषविषे हैं नहीं । यातैं प्रतिबंधतैं रहित हुई सा बुद्धि शीघ्रही स्थिरभावकूं प्राप्त होवै है । इहां यद्यपि चित्तकी स्वच्छतारूप प्रसादके प्राप्त हुएभी साक्षात् आध्यात्मिकादिक दुःखोंकी निवृत्ति होवै नहीं । किंतु परंपराकरिकै तिन दुःखोंकी निवृत्ति होवै है । तहां चित्तके प्रसादतैं बुद्धिकी स्थिरता होवै है । ता बुद्धिकी स्थिरतातैं ता बुद्धिके विरोधी अज्ञानकी निवृत्ति होवै है । तिस अज्ञानकी निवृत्तितैं ता अज्ञानके कार्यरूप सकल दुःखोंकी हानि होवै है । इस प्रकारकी परंपराकरिकै तिन दुःखोंकी निवृत्ति होवै है । यातैं चित्तके प्रसाद हुए सर्व दुःखोंका नाश कथन करणा संभवता नहीं । तथापि ता चित्तके प्रसादकी प्राप्तिवासतै प्रयत्नकी अधिकता बोधन करणेवासतै ता चित्तके प्रसादविषे सर्व दुःखोंके नाशकी कारणता कथन करी है । यातैं किं-

चित्‌मात्रभी विरोधकी प्राप्ति होवै नहीं इति ॥ ६५ ॥ ❁ ॥ तहां पूर्व श्लोकविषे अन्वयमुखकरिकै कथन करा जो अर्थ है तिसी अर्थकूं अब व्यतिरेकमुखकरिकै दृढ करे हैं।

(मू. श्लो.) नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना। न चाभावयतः शांतिरशांतस्य कुतः सुखं ॥ ६६ ॥ (पदच्छेदः) न। अस्ति। बुद्धिः। अयुक्तस्य। न। च। अयुक्तस्य। भावना। न च। अभावयतः। शांतिः। अशांतस्य। कुतः। सुखं ॥ ६६ ॥ (पदार्थः) हे अर्जुन चित्तके जयतैं रहित पुरुषकूं बुद्धि नहीं उत्पन्न होवै है तथा ता अयुक्त पुरुषकूं भावना नहीं उत्पन्न होवै है तथा ता भावनातैं रहित पुरुषकूं शांति नहीं उत्पन्न होवै है तौ शांतिरहित पुरुषकूं सुख कहांतैं होवै ॥ ६६ ॥

टीका। जिस पुरुषनैं अपणे चित्तकूं नहीं वशि करा है ता पुरुषका नाम अयुक्त है। ऐसे अयुक्त पुरुषकूं श्रवणमननरूप वेदांतविचारकरिकै जन्य आत्मविषयक बुद्धि उत्पन्न होवै नहीं। और ता बुद्धिके अभाव हुए तिस अयुक्त पुरुषकूं विजातीय वृत्तियोंके व्यवधानतैं रहित सजातीय वृत्तियोंका प्रवाहरूप निदिध्यासनरूप भावना उत्पन्न होवै नहीं। और ता निदिध्यासनरूप भावनातैं रहित पुरुषकूं कार्यसहित अविद्याके निवृत्त करणेहारी तथा तत्त्वमसि आदिक वेदांतवाक्योंतैं जन्य तथा जीवब्रह्मके अभेदकूं विषय करणेहारी साक्षात्काररूप शांति नहीं उत्पन्न होवै है। और ता आत्म-साक्षात्काररूप शांतितैं रहित पुरुषकूं मोक्षानंदरूप सुख प्राप्त होवै नहीं इति ॥ ६६ ॥ ❁ ॥ शंका। हे भगवन् ता अयुक्त पुरुषविषे सा बुद्धि किस कारणतैं नहीं उत्पन्न होती। ऐसी अर्जुनकी शंकाके हुए श्रीभगवान् ता बुद्धिकी न उत्पत्तिविषे कारण कथन करे हैं।

(मू. श्लो.) इंद्रियाणां हि चरतां यन्मनोनुविधीयते। तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवांभसि ॥ ६७ ॥ (पदच्छेदः) इंद्रियाणां। हि। चरतां। यत्। मनः। अनुविधीयते। तत्। अस्य। हरति। प्रज्ञां। वायुः। नावं। इव। अंभसि ॥ ६७ ॥ (पदार्थः) हे अर्जुन जिस कारणतैं अपणे अपणे विषयोंविषे प्रवर्त्तमान इंद्रियोंके मध्यविषे जिस एक इंद्रियकूंभी लक्ष्य करिकै यह मन प्रवर्त्त होवै है सो एक इंद्रियभी इस साधक पुरुषकी प्रज्ञाकूं हरण करे है जैसे जलविषे स्थित नौकाकूं प्रतिकूल वायु हरण करे है ॥ ६७ ॥

टीका। अपणे अपणे शब्दादिक विषयोंविषे प्रवर्त्तमान ऐसे जो नहीं वश करे हुए श्रोत्रादिक इंद्रिय हैं। तिन श्रोत्रादिक इंद्रियोंके मध्यविषे जिस एक

इंद्रियके अनुसारी हुआभी यह मन प्रवृत्त होवै है। सो मन सकृत एक इंद्रियभी इस साधक पुरुषकी अथवा तिस मनकी शास्त्रजन्य आत्मविषयक प्रज्ञाकूं निवृत्त करि देवै है। जैसे जलविषे स्थित नौकाकूं प्रतिकूल वायु पाषाणादिकोंविषे ले जाइकै नाश करि देवै है। तैसे सो एक इंद्रियभी या अधिकारी पुरुषके प्रज्ञाकूं बहिर्मुखताकरिकै नाश करि देवै है। तात्पर्य यह। राग द्वेषयुक्त मनकी सहायताकूं लैके अपणे विषयविषे प्रवृत्त हुआ एक इंद्रियभी जबी इस अधिकारी पुरुषकी ता प्रज्ञाकूं नाश करे है। तबी ते सर्व इंद्रिय इस अधिकारी पुरुषके प्रज्ञाकूं नाश करे हैं याकेविषे क्या कहणा है। तहां प्रतिकूल वायुकूं जलविषेही नौकाके हरण करणेका सामर्थ्य है पृथिवीविषे स्थित नौकाके हरण करणेका सामर्थ्य है नहीं। इस अर्थके सूचन करणेवासतै दृष्टांतविषे (अंभसि) यह पद कथन करा है। इस प्रकार दार्ष्टांतिकविषे जलके समान जो मनकी चंचलता है ता चंचलताके विद्यमान हुएही ता इंद्रियकूं तिस प्रज्ञाहरण करणेका सामर्थ्य होवै है। और पृथिवीके समान जो मनकी स्थिरता है। ता स्थिरताके विद्यमान हुए ता इंद्रियकूं तिस प्रज्ञाके हरण करणेका सामर्थ्य होवै नहीं इति। इहां अन्य टीकावोंविषे (यत् तत्) या दोनों शब्दोतैं मनका ग्रहण करिकै यह अर्थ करा है। विषयोंविषे प्रवृत्त इंद्रियोंकूं लक्ष्यकरिकै जो मन तिन इंद्रियोंके अनुसारी वर्ते है। सो मन इस पुरुषके प्रज्ञाकूं हरण करे है इति ॥ ६७ ॥

(मू.श्लो.) तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः। इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६८ ॥ (पदच्छेदः) तस्मात्। यस्य। महाबाहो। निगृहीतानि। सर्वशः। इंद्रियाणि। इंद्रियार्थेभ्यः। तस्य। प्रज्ञा। प्रतिष्ठिता ॥ ६८ ॥ (पदार्थः) तिस कारणतैं हे महान् बाहुवाला अर्जुन जिस पुरुषके ते सर्व इंद्रिय अपणे शब्दादिक विषयोंतैं निवृत्त हुए हैं तिस पुरुषकीही सा प्रज्ञा स्थिर होवै है ॥ ६८ ॥

टीका। हे महान् बाहुवाले अर्जुन जिस कारणतैं बहिर्मुख हुए यह इंद्रिय इस पुरुषकी प्रज्ञाकूं नाश करे हैं। तिस कारणतैं जिस पुरुषके यह मनसहित श्रोत्रादिक सर्व इंद्रिय अपणे अपणे शब्दादिक विषयोंतैं निग्रहकूं प्राप्त हुए हैं। तिस तत्त्ववेत्तारूप सिद्ध पुरुषकीही अथवा मुमुक्षुरूप सा-

धक पुरुषकीही सा आत्मविषयक प्रज्ञा स्थिर होवै है । इंद्रियोंके निग्रहतैंरहित पुरुषकी सा प्रज्ञा स्थिर होवै नहीं । इहां (हे महाबाहो) या संबोधनकरिकै श्रीभगवान्नैं यह अर्थ सूचन करा । तूं अर्जुन सर्व बाह्य शत्रुवोंके निवारण करणेविषे समर्थ है । यातैं अंतर इंद्रियरूप शत्रुवोंके निवृत्त करणेविषेभी तूं समर्थ है इति । तहां मनसहित इंद्रियोंका संयम तत्त्ववेत्ता स्थितप्रज्ञ पुरुषका तौ लक्षणरूप है । और मुमुक्षु जनके प्रति सो मनसहित इंद्रियोंका संयम ता प्रज्ञाकी प्राप्तिका साधनरूप है । या कारणतैंही (तस्य) या शब्दकरिकै तत्त्ववेत्ताका तथा मुमुक्षुका दोनोंका ग्रहण करा है । यातैं मुमुक्षु जननैं अपणे प्रज्ञाकी स्थिरता करणेवासतै अत्यंत प्रयत्नपूर्वक तिन इंद्रियोंका संयम करणा इति ॥ ६८ ॥ ॥ अब ता स्थितप्रज्ञके सर्व इंद्रियोंका संयम स्वतःही सिद्ध है इस अर्थकूं श्रीभगवान् कथन करे हैं ।

(मू.श्लो.) या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी । यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ ६९ ॥
(पदच्छेदः) या । निशा । सर्वभूतानां । तस्यां । जागर्ति । संयमी । यस्यां । जाग्रति । भूतानि । सा । निशा । पश्यतः । मुनेः ॥ ६९ ॥ (पदार्थः) हे अर्जुन जा साक्षात्काररूप प्रज्ञा सर्व अज्ञानी जनोंकी रात्रि है ता प्रज्ञारूप रात्रिविषे इंद्रियोंके संयमवाला पुरुष जागता है और जिसँ अविद्यारूप निद्राविषे यई सर्व अज्ञानी पुरुष जागते हैं साँ अविद्या साक्षात्कारवान् स्थितप्रज्ञकी रात्रि है ॥ ६९ ॥

टीका । वेदांतवाक्योंकरिकै जन्य जो मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकारकी साक्षात्काररूप प्रज्ञा है । सा प्रज्ञा अज्ञानी पुरुषोंके प्रति अप्रकाशरूप है । यातैं सा आत्मसाक्षात्काररूप प्रज्ञा तिन अज्ञानी पुरुषोंकेप्रति लोकप्रसिद्ध रात्रिकी न्यांई रात्रिरूप है । ता ब्रह्मविद्यारूप सर्व अज्ञानी जनोंकी रात्रिविषे मनसहित इंद्रियोंके संयमवाला स्थितप्रज्ञ पुरुष अज्ञानरूप निद्रातैं जागृत हुआ सावधान वर्त्ते है । और जिस द्वैतदर्शनरूप अविद्यारूप निद्राविषे सोये हुए यह अज्ञानी पुरुष स्वप्नकी न्यांई नानाप्रकारके व्यवहारोंकूं करे हैं । सा अविद्या आत्मसाक्षात्कारवान् स्थितप्रज्ञकी लोकप्रसिद्ध रात्रिकी न्यांई रात्रिरूप है । तात्पर्य यह । जबपर्यंत यह पुरुष निद्रातैं जागृत नहीं होता तबपर्यंतही नानाप्रकारके स्वप्नका दर्शन होवै है । ता निद्रातैं जागृत हु-

एतैं अनंतर स्वप्नोंका दर्शन होवै नहीं। काहेतैं बाधपर्यंतही भ्रमकी विद्यमानता होवै है। बाधके उत्तर कालविषे सो भ्रम रहै नहीं। जैसे यह सर्प नहीं है किंतु रज्जु है या प्रकारके बाधपर्यंतही ता सर्पभ्रमकी स्थिति होवै है। ता बाधके हुए सो सर्पभ्रम रहै नहीं। तैसे या अधिकारी पुरुषकूं जबपर्यंत तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति नहीं भई। तबपर्यंतही यह संसारभ्रम रहे है। और तत्त्वज्ञानके प्राप्त हुए सो संसारभ्रम निवृत्त होइ जावै है। यातैं ता ज्ञानकालविषे ता विद्वान् पुरुषका ता भ्रमजन्य कोईभी व्यवहार होवै नहीं। इति। यह वार्त्ता वार्तिक ग्रंथके कर्त्ता सुरेश्वराचार्यनैंभी कथन करी है। तहां श्लोकत्रयं। "कारकव्यवहारे हि शुद्धं वस्तु न वीक्ष्यते। शुद्धे वस्तुनि सिद्धे च कारकव्यावृतिस्तथा॥ १॥ काकोलूकनिशेवायं संसारोऽज्ञात्मवेदिनोः। या निशा सर्वभूतानामित्यवोचत्स्वयं हरिः॥२॥ बुद्धतत्त्वस्य लोकोयं जडोन्मत्तपिशाचवत्। बुद्धतत्त्वोपि लोकस्य जडोन्मत्तपिशाचवत्॥ ३॥ अर्थ यह। कर्त्ता करण इत्यादिक कारकोंके व्यवहार हुए शुद्ध आत्मवस्तु देखी जावै नहीं। और ता शुद्ध आत्मवस्तुके सिद्ध हुए तिन सर्व कारकोंकी निवृत्ति होइ जावै है इति॥१॥ किंवा जैसे काकपक्षीकी जो यह लोकप्रसिद्ध रात्रि है सा रात्रि उलूकपक्षीकी है नहीं किंतु उलूकपक्षी ता लोकप्रसिद्ध रात्रिविषे नानाप्रकारके खानपानादिक व्यवहार करे है। और ता उलूकपक्षीकी जो यह लोकप्रसिद्ध दिनरूप रात्रि है। सो दिन ता काकपक्षीकी रात्रि नहीं है। किंतु ता दिनविषे सो काक नानाप्रकारके खानपानादिक व्यवहार करे है। तैसेही अज्ञानी पुरुषकूं तथा आत्मवेत्ता पुरुषकूं यह संसार है। यह वार्ता (या निशा सर्वभूतानां) या वचनकरिकै श्रीकृष्णभगवान् आपही कहता भया है इति॥ २॥ किंवा जिस पुरुषनैं अपणे वास्तव स्वरूपकूं जान्या है। तिस विद्वान् पुरुषकूं यह सर्व लोक जड उन्मत्त पिशाचकी न्यांई प्रतीत होवै हैं। और तिन सर्व लोकोंकूंभी सो विद्वान् पुरुष जड उन्मत्त पिशाचकी न्यांई प्रतीत होवै है इति॥ ३॥ यातैं यह अर्थ सिद्ध भया। जिस पुरुषकूं जिस वस्तुका विपरीत दर्शन होवै है। तिस पुरुषकूं तिस वस्तुका सम्यक्दर्शन होवै नहीं। काहेतैं सो वस्तुका विपरीतदर्शन ता वस्तुके सम्यक् दर्शनके अभावकरिकैही जन्य होवै है। और जिस पुरुषकूं जिस वस्तुका सम्यक्दर्शन होवै है। तिस पुरुषकूं तिस वस्तुका विपरीतदर्शन होवै नहीं। काहेतैं ता विपरीतदर्शनका कारणरूप जो ता वस्तुका अदर्शन है। सो वस्तुका अदर्शन ता वस्तुके सम्यक्दर्शनकरिकै निवृत्त होइ जावै है। जैसे जिस पुरुषकूं रज्जुविषे यह सर्प है या प्रकारका विपरीतदर्शन हुआ है। तिस पुरुषकूं तिस कालविषे यह रज्जु है या प्रकारका सम्यक्दर्शन होवै नहीं। और जिस पुरुषकूं यह रज्जु है या प्रकारका सम्यक्दर्शन हुआ है तिस पुरुषकूं तिस कालविषे यह सर्प है। या प्रकारका विपरीतदर्शन होवै नहीं। तैसे आत्माके वास्तव स्वरूपकूं जानणेहारे विद्वान् पुरुषकूं प्रपंच-

विषयक विपरीतदर्शन होवै नहीं । और प्रपंचविषयक विपरीतदर्शनवाले अज्ञानी पुरुषोंकूं आत्माका सम्यक्दर्शन होवै नहीं । तहां श्रुति । " यत्र वा अन्यदिव स्यात्तत्रान्योऽन्यत्पश्येत इति । यत्रत्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत् इति " । अर्थ यह । जिस अविद्याकालविषे यह अद्वितीय आत्मा द्वैतकी न्यांई होवै है । तिस अविद्याकालविषे यह पुरुष अपणेकूं अन्य मानिकै अपणेतैं भिन्न अन्य पदार्थोंकूं देखे है इति । और जिस विद्याकालविषे इस विद्वान् पुरुषकूं यह सर्व जगत् अपणा आत्मारूपही होता भया है । तिस विद्याकालविषे यह विद्वान् पुरुष किस कारणकरिकै किस पदार्थकूं अपणेतैं भिन्न देखे । किंतु सो विद्वान् पुरुष अपणेतैं भिन्न किसी पदार्थकूंभी देखता नहीं इति । यह दोनों श्रुतियां यथाक्रमतैं अविद्याकी व्यवस्थाकूं तथा विद्याकी व्यवस्थाकूं कथन करे हैं । यातैं तत्त्वदर्शी विद्वान् पुरुषविषे अविद्याकृत क्रियाकारकादिक व्यवहार कदाचित्भी संभवै नहीं । यातैं ता स्थितप्रज्ञ विद्वान् पुरुषका सो इंद्रियोंका संयम स्वभावतैंही सिद्ध है । मुमुक्षुकी न्यांई कोई प्रयत्नसाध्य नहीं है इति ॥ ६९ ॥ तहां ता स्थितप्रज्ञ विद्वान् पुरुषका इंद्रियोंका संयम जैसे स्वभावतैंही सिद्ध है । तैसे ता स्थितप्रज्ञ विद्वान् पुरुषके सर्व विक्षेपोंकी शांतिभी स्वभावतैंही सिद्ध है । या अर्थकूं श्रीभगवान् दृष्टांतकरिकै निरूपण करे हैं ।

(मू. श्लो.) आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशंति यद्वत् । तद्वत्कामायं प्रविशंति सर्वे स शांतिमाप्नोति न कामकामी ॥ ७० ॥ (पदच्छेदः) आपूर्यमाणं । अचलप्रतिष्ठं । समुद्रं । आपः । प्रविशंति । यद्वत् । तद्वत् । कामाः । यं । प्रविशंति । सर्वे । सः । शांतिं । आप्नोति । न । कामकामी ॥ ७० ॥ (पदार्थः) हे अर्जुन जिस प्रकार सर्व नदीयोंकरिकै पूर्ण करे हुए तथा अचल प्रतिष्ठावाले समुद्रकूं वर्षाके जल प्रवेश करे हैं तिस प्रकार जिस स्थितप्रज्ञ पुरुषकूं सर्व शब्दादिक विषय प्रवेश करे हैं सो स्थितप्रज्ञ पुरुषही सर्व विक्षेपकी निवृत्तिरूप शांतिकूं प्राप्त होवै है विषयोंकी कामनावाला पुरुष ता शांतिकूं नहीं प्राप्त होवै है ॥ ७० ॥

टीका । श्रीगंगा, यमुना, गोदावरी, सिंधु, सरस्वती इत्यादिक सर्व नदीयोंके जलोंकरिकै सर्व ओरतैं पूर्ण हुआ जो समुद्र है । ता समुद्रकूंही वृष्टि

आदिकोंतैं उत्पन्न हुए सर्व जल प्रवेश करे हैं। तिन सर्व जलोंके प्रवेश हुएभी सो समुद्र अचलप्रतिष्ठही रहे है। नहीं परित्याग करी है अपणी मर्यादा जिसनैं ताका नाम अचलप्रतिष्ठ है। अथवा मैनाकादिक पर्वतोंका नाम अचल है तिन मैनाकादिक पर्वतोंकी है स्थिति जिसविषे ताका नाम अचलप्रतिष्ठ है। इतनै कहणेकरिकै ता समुद्रके गंभीरताकी अधिकता वर्णन करी। ऐसे महान् गंभीर समुद्रविषेही ते सर्व जल प्रवेश करे हैं। परंतु तिन जलोंके प्रवेश करणेतैं सो समुद्र किंचित्‌मात्रभी क्षोभकूं प्राप्त होवै नहीं। यह वार्ता सर्व लोकोंकूं अनुभवसिद्ध है। तैसे निर्विकारूपकरिकै स्थित जिस स्थितप्रज्ञ पुरुषकूं यह अज्ञानी पुरुषोंकी कामनाके विषय शब्दादिक विषय प्रारब्धकर्मके वशतैं प्राप्त होवै है। परंतु ते शब्दादिक विषय जिस विद्वान् पुरुषकूं विकारकी प्राप्ति करि सकते नहीं। ऐसा महान् समुद्रके समान सो स्थितप्रज्ञ विद्वान् पुरुषही लौकिक वैदिक सर्व कर्मोंकी निवृत्तिरूप तथा कार्यसहित अविद्याकी निवृत्तिरूप शांतिकूं प्राप्त होवै है। और जो पुरुष तिन शब्दादिक विषयोंके प्राप्तिकी इच्छावाला है। सो पुरुष ता शांतिकूं प्राप्त होवै नहीं। किंतु सो विषयासक्त पुरुष सर्व कालविषे ता लौकिक वैदिक कर्मरूप विक्षेपकरिकै महान् क्लेशरूप समुद्रविषे मग्न होवै है। इतनैकरिकै यह अर्थ कह्या गया। जिस पुरुषकूं गुरुशास्त्रके उपदेशतैं आत्मसाक्षात्कारकी प्राप्ति भई है। तिस ज्ञानवान् पुरुषकूंही फलरूप विद्वत्संन्यास प्राप्त होवै है। तथा तिस ज्ञानवान् पुरुषकूंही सर्व विक्षेपकी निवृत्तिरूप जीवन्मुक्तिकी प्राप्ति होवै है। तथा विषयभोगोंके प्राप्त हुएभी निर्विकारताही होवै है इति ॥ ७० ॥ ❁ ॥ जिस कारणतैं विषयोंकी कामनावाला पुरुष ता शांतिकूं प्राप्त होवै नहीं। तिस कारणतैं प्राप्त हुएभी तिन विषयोंकूं यह विवेकी पुरुष परित्यागही करै। या अर्थकूं श्रीभगवान् कहे हैं।

(मू. श्लो.) विहाय कामान्यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः। निर्ममो निरहंकारः स शांतिमधिगच्छति ॥ ७१ ॥ (पदच्छेदः) विहाय। कामान्। यः। सर्वान्। पुमान्। चरति। निःस्पृहः। निर्ममः। निरहंकारः। सः। शांतिं। अधिगच्छति ॥ ॥ ७१ ॥ (पदार्थः) हे अर्जुन जो पुरुष सर्व कामोंकूं परित्याग करिकै निःस्पृह हुआ तथा निर्मम हुआ तथा निरहंकार हुआ विचरै है सो स्थितप्रज्ञ तां शांतिकूं प्राप्त होवै है ॥ ७१ ॥

टीका। गृह, क्षेत्र, धन आदिक जितनै की बहिरले काम हैं। तथा मनोराज्यरूप जितनै की अंतरले काम हैं। तथा वासनामात्ररूप जितनै की काम हैं ऐसे तीन प्रकारके कामोंकूं जो पुरुष मार्गविषे चलते हुए तृणोंके स्पर्शकी न्यांई तुच्छ जानिकै उपेक्षा करि देवै है। तथा जो पुरुष अपणे शरीरके जीवनमात्रकी इच्छातैंभी रहित है। तथा जो पुरुष शरीर इंद्रियादिक संघातविषे यहही मैं हूं या प्रकारके अभिमानरूप अहंकारतैं रहित है। अथवा विद्या, उत्तम आश्रम आदिकोंकी प्राप्तिकरिकै जन्य जो अपणेविषे उत्कृष्टता बुद्धिरूप अहंकार है ता अहंकारतैं रहित है। निरहंकार होणेतैं जो पुरुष निर्मम है। क्या शरीरके निर्वाहवासतै प्रारब्धकर्मनैं प्राप्त करे जो कंथा कौपिनादिक हैं तिनोंविषेभी यह हमारे हैं या प्रकारके अभिमानतैं जो पुरुष रहित है। इस प्रकार सर्व पदार्थोंकी उपेक्षाकरिकै तथा निःस्पृह होइकै तथा निरहंकार होइकै तथा निर्मम होइकै जो पुरुष प्रारब्धकर्मके वशतैं शास्त्रविहित भोगोंकूं भोगे है। अथवा अपणी इच्छापूर्वक जहां तहां विचरे है। सो इस प्रकारका स्थितप्रज्ञ पुरुष सर्व संसारदुःखोंकी उपरामतारूप कार्यसहित अविद्याकी निवृत्तिरूप शांतिकूं आत्मज्ञानके बलतैं प्राप्त होवै है। या प्रकारका व्रजन ता स्थितप्रज्ञ पुरुषका होवै है। इतनै कहणेकरिकै (किं व्रजेत्) या चतुर्थ प्रश्नका उत्तर सिद्ध भया इति ॥ ७१ ॥ ❁ ॥ तहां पूर्व ग्रंथविषे चारि प्रश्नोंके चारि उत्तरोंके व्याजकरिकै स्थितप्रज्ञ पुरुषके सर्व लक्षणोंकूं मुमुक्षु जननैं अवश्य संपादन करणा यह अर्थ निरूपण करा। अब निष्कामकर्मयोगका फलरूप जो सांख्यनिष्ठा है ता सांख्यनिष्ठाकी फलके निरूपणकरिकै स्तुति करता हुआ श्रीभगवान् ताका उपसंहार करे हैं।

(मू·श्लो·) एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति। स्थित्वास्यामंतकालेपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ ७२ ॥ इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां श्रीभीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगोनाम द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ २ ॥ (पदच्छेदः) एषा। ब्राह्मी। स्थितिः। पार्थ। न। एनां। प्राप्य। विमुह्यति। स्थित्वा। अस्यां। अंतकाले। अपि। ब्रह्मनिर्वाणं। ऋच्छति ॥ ७२ ॥ (पदार्थः) हे पार्थ यह जो ब्रह्मविषयक स्थिति है इसकूं प्राप्त होइकै कोइभी पुरुष नहीं मोहकूं प्राप्त होवै है इस स्थितिविषे अंत्य अवस्थाविषे स्थित होइकै भी यह पुरुष ब्रह्मनिर्वाणकूं प्राप्त होवै है ॥ ७२ ॥

टीका । हे अर्जुन पूर्व हमनैं तुमारे प्रति स्थितप्रज्ञ पुरुषके लक्षणोंके व्याजकरिकै कथन करी हुई तथा (एषा तेभिहिता सांख्ये बुद्धिः) इस वचनकरिकै कथन करी हुई जो सर्व कर्मोंके संन्यासपूर्वक परमात्माकी ज्ञानरूप स्थिति है । कैसी है सा स्थिति । प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मकूं विषय करणेहारी है । यातैं ता स्थितिकूं ब्राह्मी कहे हैं । ऐसी ब्रह्मनिष्ठारूप स्थितिकूं जो कोई पुरुष प्राप्त होवै है । सो पुरुष पुनः कदाचित्भी अज्ञानरूप मोहकूं प्राप्त होवै नहीं । काहेतैं सो अज्ञान अनादि है क्या उत्पत्तितैं रहित है । यातै आत्मज्ञानकरिकै एकवार नाशकूं प्राप्त हुआ सो अज्ञान पुनः कदाचित्भी उत्पन्न होवै नहीं । ऐसी ब्रह्मनिष्ठारूप स्थितिविषे जो कोई पुरुष अंत्य अवस्थाविषेभी स्थित होवे है । सो पुरुषभी ब्रह्मनिर्वाणकूं प्राप्त होवै है। क्या ब्रह्मविषेही आनंदकूं प्राप्त होवै है। अथवा ब्रह्मरूप आनंदकूं मैं ब्रह्मरूप हूं या प्रकार अभेदरूपकरिकै प्राप्त होवे है। इहां (निर्वाणं) यह पद आनंदका बोधक है। और किसी टीकाविषे तौ (ब्रह्मनिर्वाणं) यह दानों पद भिन्न मानिकरिकै यह अर्थ करा है। ता ब्राह्मीस्थितिविषे स्थित होइकै सो विद्वान् पुरुष ब्रह्मकूं प्राप्त होवै है । शंका । जैसे स्वर्गादिक लोक गमनरूप क्रियाकरिकै प्राप्त होवे हैं । तैसे सो ब्रह्मभी गमनरूप क्रियाकरिकै प्राप्त होता होवैगा । ऐसी शंकाके हुए ता शंकाके निवृत्त करणेवासतै ता ब्रह्मका विशेषण कहे हैं (निर्वाणं इति) " निर्गतं वानं गमनं यस्मिन्प्राप्ये ब्रह्मणि तन्निर्वाणं "। अर्थ यह । निवृत्त होइ गई है गमनरूप क्रिया जिस ब्रह्मविषे ताका नाम निर्वाण है । तहां श्रुति " न तस्य प्राणा उत्क्रामंत्यत्रैव समवलीयंते ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति " अर्थ यह । मरणकालविषे जैसे अज्ञानी पुरुषोंके प्राण इस शरीरतैं उत्क्रमण करे हैं । तैसे तिस ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी पुरुषके प्राण इस शरीरतैं बाहिर उत्क्रमण करते नहीं । किंतु ते प्राण इस शरीरके भीतरही लयभावकूं प्राप्त होवै हैं । और यह विद्वान् पुरुष ब्रह्मरूप हुआही ब्रह्मकूं प्राप्त होवै है। इति । इहां (अंतकालेपि) या वचनविषे स्थित जो (अपि) यह शब्द है । ता अपि शब्दकरिकै श्रीभगवान्नैं यह कैमुतिक न्याय सूचन करा । यह अधिकारी पुरुष जबी अंत्य अवस्थाविषेभी ता ब्रह्मनिष्ठाविषे स्थित होइकै ता आनंदस्वरूप ब्रह्मकूंही प्राप्त होवे है । तबी जो पुरुष ब्रह्मचर्यआश्रमतैंही संन्यासकूं करिकै मरणपर्यंत ता ब्राह्मीस्थितिविषे स्थित हुआ है । सो पुरुष ता ब्रह्मकूं प्राप्त होवै है । याके विषे क्या कहणा है । तहां श्लोक । "विज्ञाय चरमावस्थां देवताभ्यो नृपोत्तमः । खट्वांगो नामराजर्षिर्मुहूर्ते मुक्तिमेयिवान् इति "। अर्थ यह । सर्व राजावोंविषे श्रेष्ठ खट्वांग नामा राजऋषि अपणी अंत्य अवस्थाकूं देखिकै देवतावोंके उपदेशतैं एक मुहूर्तमात्रविषे कैवल्यमुक्तिकूं प्राप्त होता भया इति । अब इस द्वितीय अध्यायविषे विस्तारतैं निरूपण करा जो अर्थ है । ता सर्व अर्थका संक्षेपतैं निरूपण करणेहारा श्लोक कथन करे

हैं । "ज्ञानं तत्साधनं कर्म सत्वशुद्धिश्च तत्फलं । तत्फलं ज्ञाननिष्ठैवेत्यध्यायेऽस्मिन्प्रकीर्तितं" । अर्थ यह । इस भगवद्गीताके द्वितीय अध्यायविषे आत्मज्ञानका कथन करा है । तथा ता ज्ञानका परंपरा साधनरूप निष्काम कर्म कथन करा है । और ता निष्काम कर्मका अंतःकरणकी शुद्धिरूप फल कथन करा है । और ता अंतःकरणके शुद्धिका ज्ञाननिष्ठारूप फल कथन करा है । इतने पदार्थ इस द्वितीय अध्यायविषे कथन करे हैं इति ॥ ७२ ॥ ❁ ॥ इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकार्य श्रीमत्स्वामिउद्धवानंदगिरिपूज्यपादशिष्येण स्वामिचिद्घनानंदगिरिणा विरचितायां प्राकृतटीकायां श्रीभगवद्गीतागूढार्थदीपिकाख्यायां सर्वगीतार्थसूत्रं नाम द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ २ ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः श्रीकाशीविश्वेश्वराभ्यां नमः श्रीशंकराचार्येभ्यो नमः ॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥